तत्त्वार्थसूत्रम्

Tattvārthasūtram

प्रथमोऽध्यायः

First Chapter

तत्त्वार्थसूत्र

प्रथम अध्याय

इस चित्र में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग का चित्राङ्कन किया है।

सम्यग्दर्शन को चित्र के केन्द्र में जिन मन्दिर व वीतरागी भगवान् की पूजन-अर्चना करते दर्शाया है। सम्यग्दर्शन के आठ अङ्गों की आठ सीढ़ियाँ दिखाई हैं। सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान को युगपत् ही मेघ पटल के हटने पर सूर्य के रूप में बायीं तरफ अंकित किया है। वहीं **सम्यग्ज्ञान** के निमित्त उपदेश, शास्त्र स्तुति व ऊपरी भाग में शास्त्र, रचना करते अङ्कित किया है।

सम्यग्ज्ञानों में अंतिम ज्ञान - केवलज्ञान को समवशरण में विराजमान अर्हंत् परमेष्ठी के रूप में बताया है।

सम्यक् चारित्र – दायीं तरफ मुनिसंघ को सीढ़ियाँ चढ़ते दिखाया है व नीचे ध्यानस्थ मुनि महाराज व आर्यिका संघ का अंकन है। चित्र के बाहरी आकार को लोकाकार में बनाया गया है।

तत्त्वार्थसूत्रम्

Tattvārthasūtram

प्रथमोऽध्यायः

First Chapter

मङ्गलाचरणम्

Benedictory Recital

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये।।

Mokṣamārgasya Netāraṁ, Bhettāraṁ Karmabhūbhṛtām।
Jñātāraṁ Viśvatattvānāṁ, Vande Tadguṇalabdhaye।।

शब्दार्थ : **मोक्षमार्गस्य –** मोक्षमार्ग के; **नेतारम् –** नेता को; **भेत्तारम् –** भेत्ता को; **कर्मभूभृताम् –** कर्म पर्वतों के; **ज्ञातारम् –** ज्ञाता को; **विश्वतत्त्वानाम् –** विश्व तत्त्वों के; **वन्दे –** (मैं) वन्दना करता हूँ; **तद्गुणलब्धये –** उन गुणों की प्राप्ति के लिये।

Meaning of Words : **Mokṣamārgasya -** of the path of liberation; **Netāram -** to the promulgator of the path; **Bhettāram -** to the destroyer of; **Karmabhūbhṛtām -** mountains of karmas; **Jñātāram -** to the knower of; **Viśvatattvānām -** whole Reality of universe; **Vande -** (I) revere; **Tadguṇalabdhaye -** so as to realize those virtues possessed by Him.

कारिका का अर्थ : मोक्षमार्ग के नेता, कर्म पर्वतों के भेदन करने वाले और विश्व के समस्त तत्त्वों को जानने वाले (सर्वज्ञ) को, उनके जैसे गुणों की प्राप्ति हेतु (मैं) वन्दना करता हूँ।

English Rendering : (I) revere to (the Lord) the promulgator of the path of liberation, the destroyer of the mountains of karmas and the knower of the whole reality of the universe (Omniscient) so as to realize those virtues which are possessed by Him.

टीका : ग्रन्थ के प्रारम्भ में अर्हन्त भगवान् की वन्दना कर उनके जैसे गुणों की प्राप्ति हेतु इस मङ्गलाचरण की रचना हुई है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में, कभी मध्य में और कभी ग्रन्थ के अन्त में भी मङ्गलाचरण इस मङ्गल भावना से किया जाता है कि जिससे ग्रन्थ की रचना बिना किसी बाधा के आगमानुसार पूर्ण हो जावे।

इस मङ्गलाचरण में किसी विशिष्ट परमेष्ठी का उल्लेख न कर उन विशेषणों का उल्लेख हुआ है जो अर्हन्त परमेष्ठी में पाये जाते हैं। वे विशेष गुण हैं - मोक्षमार्ग के पथप्रदर्शक - मोक्षमार्ग के नेता होने से हितोपदेशी, समस्त घातिया कर्मों को क्षय कर वीतरागता प्राप्त करने से - वीतराग और विश्व के समस्त तत्त्वों के ज्ञाता होने से सर्वज्ञ। इन तीन गुणों की प्राप्ति, निर्वाण की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। अतः प्रत्येक भव्य को इन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जैन दर्शन में किसी व्यक्ति विशेष की आराधना नहीं की जाती; यहाँ तो गुणों की पूज्यता का विधान है। इसलिये अरहन्त परमेष्ठी के विशेष गुणों को ही इस मङ्गलाचरण में समाहित किया गया है।

किसी भव्य आत्मा ने एकान्त स्थान में विराजमान, मुनियों की सभा में अपनी शान्त-सौम्य छवि द्वारा मोक्षमार्ग को दर्शानेवाले वीतराग आचार्य परमेष्ठी के समीप जाकर विनयपूर्वक पूछा – 'हे भगवन्! आत्मा का हित क्या है?' उनसे उत्तर मिला – 'मोक्ष ही आत्मा का हित है।' और तब अनायास ही उस पथिक ने पूछ लिया कि कृपाकर यह बताएँ कि उस मोक्ष का स्वरूप कैसा है और उसे पाने का उपाय क्या है? तब इस पहले सूत्र की रचना हुई और 'तत्त्वार्थसूत्र' अपरनाम 'मोक्षशास्त्र' ग्रन्थ प्रारम्भ हुआ।

Comments : This benedictory recital is composed at the commencement of the sacred text to pay obeisance to Arhanta Bhagavān invoking his blessings for attainment of virtues as he is endowed with. Benediction is composed at the commencement, sometimes in the middle and at the end also for completion of the composition of scripture without any obstacles and in accordance with established scriptural traditions.

In this benediction, obeisance is not directed towards any particular Supreme Being but only to those virtues with which Arhanta Parameṣṭhī is endowed, are mentioned. Those special virtues are - leader of the path of liberation i.e. benevolent for all (Hitopadeśī), on destroying all destructive (Ghātiyā) karmas being beyond attachment and aversion (Vītarāgī) and knower of all Realities (Tattvas) of the

universe i.e. Omniscient. Attainment of all the three virtues is a must for attainment of salvation. As such, every soul worthy for liberation (Bhavya Ātmā) must try to acquire these virtues.

It is to be specially mentioned that in Jaina philosophy, no specific personage is worshipped. Prescription is for adoration of the virtues. As such in the benediction, citation is made only of the unique virtues of Arhanta Parameṣṭhī.

Someone worthy for attaining liberation approached an assembly of hermits in a lonely place and asked reverencefully the passionless, preceptor Ācārya Parameṣṭhī seated in the midst of the congregation of monks as an embodiment of peace having gentle form, preaching the path of liberation 'O! Bhagavān, in what rests good of the soul?' He replied 'Liberation alone is good for soul.' Then all of a sudden inquisitive person requested him to explain the nature of salvation and the ways and means to attain the same. Then the first Sūtra was composed and the composition of this sacred scripture known as 'Tattvārthasūtra' or 'Mokṣaśāstra' began.

मोक्षमार्ग का निरूपण
Description of Path of Liberation

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ।।१।।

(सम्यक्-दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।)

Transliteration :

Samyagdarśanajñānacāritrāṇi Mokṣamārgaḥ. (1)

शब्दार्थ : **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि –** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र (तीनों मिलकर); **मोक्षमार्गः –** मोक्ष का मार्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

Meaning of Words : **Samyagdarśanajñānacāritrāṇi -** Right Faith, Right Knowledge and Right Conduct (all together); **Mokṣamārgaḥ -** (constitutes) the path to liberation.

सूत्रार्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

English Rendering : Right Faith, Right Knowledge & Right Conduct combined together constitute the path of liberation.

टीका : इस सूत्र के पहले शब्द 'सम्यक्' का अर्थ है समीचीनता या प्रशंसा। यह 'सम्यक्' शब्द प्रत्येक के साथ लगाना चाहिये; अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। ये तीनों अलग-अलग मोक्ष के मार्ग नहीं हैं, ये तीनों मिलकर ही मोक्ष का मार्ग है। इसलिये सूत्र में एकवचन में 'मार्गः' शब्द रखा है।

यद्यपि ज्ञान में दर्शन की अपेक्षा कम अक्षर हैं, तथापि दर्शन पूज्य होने से उसे ज्ञान के पहले रखा गया है, क्योंकि अल्पाक्षर से पूज्य महान् होता है। चूँकि सम्यग्दर्शन से ही ज्ञान में समीचीनता आती है, अतः सम्यग्दर्शन ही पूज्य है। बिना सम्यग्दर्शन के ज्ञान मोक्षमार्ग का साधक नहीं है। सम्यक्चारित्र ज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये चारित्र के पहले ज्ञान को रखा गया है।

ज्ञान सम्यग्दर्शन को दृढ़ बनाये रखता है तथा चारित्र को निर्मल बनाने में महान् कार्य करता है। अतः उसे मध्य में रखा है। अर्थात् ज्ञान का कार्य दर्शन और चारित्र दोनों को समीचीन बनाये रखना है। इसलिये इसे मध्य में रखना ही श्रेष्ठ है।

पदार्थों के यथार्थ ज्ञानमूलक श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। दर्शन के पहले 'सम्यक्' विशेषण इसी प्रकार के श्रद्धान को दर्शाने के लिये दिया गया है। जिस-जिस प्रकार से जीव आदि पदार्थ अवस्थित हैं, उस-उस प्रकार से उनका जानना सम्यग्ज्ञान है। सम्यक् विशेषण संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय (विमोह) रूप ज्ञानों का निराकरण करने के लिये दिया है। अनिश्चित ज्ञान संशय है, जैसे यह सीप है या चाँदी? विपरीत ज्ञान विपर्यय है, जैसे रस्सी में साँप का ज्ञान। अनिश्चित तथा विकल्प सहित ज्ञान अनध्यवसाय है, जैसे चलते हुए पाँवों में छुए हुए पत्थर का 'कुछ है', इस प्रकार का ज्ञान। जो ज्ञानी पुरुष, संसार के कारणों को दूर करने में उद्यत हैं, उनके कर्मों के ग्रहण करने में निमित्तभूत क्रिया अर्थात् अशुभ क्रिया से निवृत्ति और शुभ क्रिया में प्रवृत्ति होने को सम्यक् चारित्र कहते हैं। वह चारित्र व्रत, समिति, गुप्ति आदि रूप है। चारित्र के पहले 'सम्यक्' विशेषण अज्ञानपूर्वक आचरण के निराकरण करने के लिये दिया गया है।

Comments : The first word of this Sūtra 'Samyak' means righteousness or laudatory. It is pre-fixed to every key-word of the Sūtra i.e. Right Faith, Right Knowledge and Right Conduct. These three do not separately constitute the path of liberation but the three together constitute that path. It is to indicate this fact that in the Sūtra singular number of the 'Mārgaḥ' is used.

Although the word knowledge (i.e. Jñāna) has lesser number of letters in comparision to the word faith (Darśana) but as 'Darśana' being more venerable than knowledge, faith is mentioned prior to the knowledge as venerability is to be preferred over lesser letters. Righteousness in knowledge is due to Right Faith and as such Right Faith is adorable. Without having Right Faith, knowledge is of no use in the path of liberation. As the righteousness of conduct is achieved only with the help of Right Knowledge, hence knowledge is mentioned (in the Sūtra) prior to conduct.

Right Knowledge imparts firmness to faith and makes conduct pure and bright. As such placing the word knowledge in between the two is appropriate. Right knowledge continues to strengthen both the faith as well as conduct and hence it is rightly placed between the two (i.e. faith and conduct).

Firm belief based on true knowledge of substances is Right Faith The word 'Samyak' prefixed to faith is used to indicate a required kind of belief. Knowing the nature of substances like Jīva etc. as they are or as they exactly exist is Right Knowledge. The adjective 'Right' i.e. 'Samyak' is used to ward off doubt, perversity and bewilderness in knowledge. Uncertainty in knowledge amounts to doubt as to what it is oyster or silver? To have contrary knowledge is perversity. i.e. to take rope as snake. Irresolute and indefinite knowledge is bewilderness i.e touch of pebble with a foot during a walk makes mistaken feeling that something is there without knowing exactly what it is. Performance of activities by the wise persons for removal of causes of mundane wandering i.e. to perform only auspicious activities and to give up inauspicious ones is known as Right Conduct. Such a conduct comprises of Vrata (vow), Samiti (carefulness) and Gupti (restraint). Adjective 'Right' added to the conduct is to indicate warding off performance of activities without proper knowledge or understanding.

सम्यग्दर्शन का लक्षण – उत्पत्ति और भेद
Characteristics of Right Faith - Attainment & Kinds

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।।२।।

(तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।)

Tattvārthaśraddhānaṁ Śamyagdarśanam. (2)

शब्दार्थ : **तत्त्वार्थश्रद्धानम् –** तत्त्व के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान; **सम्यग्दर्शनम्** – सम्यग्दर्शन है।

Meaning of Words : **Tattvārthaśraddhānam -** to have belief or faith in the nature of Realities as they are; **Samyagdarśanam -** is the Right Faith.

सूत्रार्थ : तत्त्व के यथार्थ स्वरूप का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अर्थात् जीव आदि सात तत्त्वों का जैसा स्वरूप वीतराग सर्वज्ञ भगवान् ने कहा है, उसका उसी प्रकार श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

English Rendering : To have belief or faith in the true nature of seven Realities (Tattvas) Jīva etc. exactly as preached by Vītarāga Omniscient is known as Right Faith.

टीका : 'तत्त्वार्थ' शब्द से यहाँ तात्पर्य है कि जिस पदार्थ का अर्थ करना है उसके स्वभाव की ओर रुचि होना। शब्द या उसकी व्याख्या की अपेक्षा शब्दों में कहे गये भावों में रुचि होना ही तत्त्वार्थ-श्रद्धान या सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है – सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन। प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि की अभिव्यक्ति लक्षणवाला सराग सम्यग्दर्शन है और आत्मा की विशुद्धि मात्र वीतराग सम्यग्दर्शन है। प्रशम भाव का अर्थ है रागादि की तीव्रता न होना। संवेग भाव का अर्थ है संसार से भीति रूप परिणाम का होना। अनुकम्पा का अर्थ है सब जीवों के प्रति दया भाव रखना। आस्तिक्य भाव का अर्थ है जीव आदि पदार्थ सत्स्वरूप हैं, लोक अनादि-निधन है, और इसका अन्य कोई कर्त्ता नहीं है तथा निमित्त-नैमित्तिक भाव के रहते हुए भी अपने परिणमन स्वभाव के कारण सबका परिणमन स्वयं होता है; आगम और सद्गुरु के उपदेशानुसार ऐसी प्राञ्जल बुद्धि का होना।

सम्यग्दर्शन के सराग और वीतराग भेद पात्र की अपेक्षा से किये गये हैं। सरागी जीव का सम्यग्दर्शन सराग सम्यग्दर्शन कहलाता है और वीतरागी जीव का सम्यग्दर्शन वीतराग सम्यग्दर्शन।

सम्यग्दर्शन के तीन भेद और भी हैं – औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक। अनन्तानुबन्धी की चार और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के उपशम होने पर जो पदार्थों का निर्मल श्रद्धान होता है, उसे औपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह

सम्यग्दर्शन असंयत सम्यग्दृष्टिरूप चतुर्थ गुणस्थान से लेकर उपशान्त कषाय ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। चार अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व – इन छह प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय और इन्हीं के सद्-अवस्था रूप उपशम से, तथा देशघाति स्पर्धक वाली सम्यक्त्व प्रकृति के उदय में जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है, वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है। अनन्तानुबन्धी की चार कषाय और दर्शनमोहनीय कर्म के सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व के प्रारम्भ होने पर अथवा प्राप्ति या निष्ठापन होने पर क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के ऐसी विशाल, गम्भीर एवं दृढ़ बुद्धि उत्पन्न हो जाती है कि वह कुछ असम्भव या अनहोनी घटनायें देखकर भी विस्मय या क्षोभ को प्राप्त नहीं होता। क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन तो सराग अवस्था में ही पाया जाता है किन्तु शेष दो प्रकार का सम्यग्दर्शन सराग और वीतराग दोनों अवस्थाओं में पाया जाता है। सरागता और वीतरागता का सम्बन्ध कषाय के सद्भाव और असद्भाव से है। जिसके राग-द्वेष रूप प्रवृत्ति पाई जाती है, उसके सम्यग्दर्शनजन्य आत्मविशुद्धि प्रकट तो हो जाती है, पर वह स्पष्ट लक्षित नहीं होती। बाह्य प्रवृत्ति में रागांश या द्वेषांश की प्रधानता बनी रहती है।

अनादि मिथ्यादृष्टि को सर्वप्रथम उपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिये इन पाँच लब्धियों का प्राप्त होना आवश्यक है – क्षयोपशम लब्धि, विशुद्धि लब्धि, देशना लब्धि, प्रायोग्य लब्धि और करण लब्धि। अशुभ कर्मों के अनुभाग रूप स्पर्धकों की, विशुद्धि के द्वारा, प्रतिसमय अनन्तगुणा हीन यानी कम-कम रूप से उदीरणा में आना क्षयोपशम लब्धि है। साता आदि पुण्य कर्मों के बन्ध के निमित्तभूत एवं असाता आदि अशुभ कर्मों के बन्ध-विरोध आदि योग्य परिणाम होना विशुद्धि लब्धि है। जिनेन्द्र-प्रणीत तत्त्वों के उपदेशक या उपदिष्ट की प्राप्ति आदि रूप देशना लब्धि है। सर्व कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और उत्कृष्ट अनुभाग को घटा-घटा के अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर स्थिति मात्र स्थापित करना एवं द्विस्थानीय अनुभाग में स्थापित करना प्रायोग्य लब्धि है। अधःकरण आदि अत्यन्त विशुद्ध परिणाम, जिनके द्वारा नियम से सम्यक्त्व होता है, उसे करण लब्धि कहते हैं। पहले की चार लब्धियाँ होने पर भी सम्यक्त्व होना आवश्यक नहीं है।

अनादि मिथ्यादृष्टि के दर्शनमोहनीय की एक मिथ्यात्व प्रकृति ही रहती है तथा उसके चार अनन्तानुबन्धी कषाय – क्रोध, मान, माया एवं लोभ सहित पाँच प्रकृतियों का उपशम कर वह सम्यग्दृष्टि बनता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है। इतने काल

तक ये प्रकृतियाँ उदय में नहीं आतीं, मात्र सत्ता में रहती हैं। इस प्रकार के सम्यक्त्व के होते ही मिथ्यात्व प्रकृति के तीन खण्ड हो जाते हैं – मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति। औपशमिक सम्यक्त्व होने पर अनन्त संसारभ्रमण का विच्छेद होकर मात्र अर्धपुद्गल परावर्तन प्रमाण संसार शेष रह जाता है।

Comments : The meaning of 'Tattvārtha' here is to have inclination towards the nature of the substance which is referred to. Right Belief means an inclination to ascertain things in their true perspective and nature, rather than mere words i.e. meaning used for the purpose.

Right Faith is of two types - Sarāga and Vītarāga. Sarāga type of Right Faith is manifested by the attributes of Praśama (having mild passions or spiritual calmness), Saṁvega (mental agitation or fear of mundane sufferings), Anukampā (compassion towards all beings), Āstikya (right perception and faith in true religion) etc. To have faith and belief in the pure nature of one's soul is Vītarāga type of Right Faith. Praśamabhāva means to be free from intense feelings of passions etc. Saṁvegabhāva means to have volitional fear of mundane sufferings. Anukampā means to have feelings of kindness towards all sentient beings. Āstikyabhāva means belief in the existence of substances like Jīva etc., existence of universe from beginningless times & its continuity for endless times, none is its creator and all entities continue to transform on their own as per their nature depending on the cause and effect relationship; to have unshakable true spiritual belief in the spiritual tenets & preachings of preceptors.

The two types of Right Faith - Sarāga & Vītarāga have been made in keeping the view of the souls endowed with. Those who attain it while having state of attachment etc. are termed as having Sarāga Right Faith and those who attain after destruction or subsidence of all their passions are termed as having Vītarāga Right Faith.

Right Faith is also classified as of three kinds - Aupaśamika (subsidential), Kṣāyopaśamika (destructive-cum-subsidential) and Kṣāyika (destructive). Attainment of volitional purity regarding the nature of substances as a result of subsidence of the four kinds of Anantānubandhī passions and three kinds of perception deluding Karmas etc. is the subsidential Right Faith. This kind of Right Faith manifests from vowless Right Believers in fourth stage of spiritual development

(Guṇasthāna) to the ones having subsided passions up to the eleventh stage of spiritual development. The belief in the nature of Realities as a result of desruction without fruition and subsidence in that very state of the four Anantānubandhī passions & Mithyātva karma (Wrong Faith karma) and Samyagmithyātva (Mixed Karma) and with the rise of Samyaktva Prakṛti-Desaghāti (Right Faith karma with partial obscuring karmic particles) results in Kṣāyopaśamika (Destructive-cum-subsidential) Right Faith. Attainment of volitional purity on total destruction of four kinds of Anantānubandhī passions and perception deluding karmas is Kṣāyika Right Faith. At the commencement of attainment, during process of attainment and on completion of attainment of Right Faith arising from destruction of Karmas, the Right Believer gets bestowed with virtues like greatness, maturity and admantine outlook that he does not get perturbed or disturbed on encountering unexpected and astonishing events or occurances. The destructive cum-subsidential (Kṣāyopaśama) Right Faith is attained by the souls dwelling in the state of attachment etc. but the other two types i.e. subsidential and destructive do occur in both Sarāga and Vītarāga states. These two states are in respect of having passions and passionlessness states respectively. Those in the Sarāga stage do attain volitional purity as a result of rise of Right Faith karma but the same is not clearly perceptible as the external activities of such Right Believers continue to be coupled with portions of attachment or aversion.

Anādi Mithyādṛṣṭi (Wrong Believer with beginningless wrong faith karmas) attains, in the first instance only the subsidential Right Faith. For attainment of the same, it is essential to have five Labdhis (attainments) - Kṣāyopaśama Labdhi (Destructive-cum-subsidential attainment), Viśuddhi Labdhi (Passion-free-ness causing right perception attainment), Deśanā Labdhi (Instructive attainment), Prāyogya Labdhi (Experimental attainment) and Karaṇa Labdhi (Efficiency Attainment causing Right Perception). As a result of volitional purity, fruition of karmas before their due time with infinitely less & less intensity all the time is Kṣāyopaśama Labdhi. To have such a volitional purity that bondage of auspicious karmas is more & more and those of inauspicious ones less & less all the time, is Viśuddhi Labdhi. To get an opportunity to meet a preceptor preaching Jaina tenets or to get desired objects of spiritual development is Desanā Labdhi. To be able to bring down the maximum duration and optimum intensity of all bound karmas to the level of Antaḥ-Koḍā-Koḍī Sāgara and to establish fruition in the sec-

ond order (lesser intensity of inauspicious karma fruition and greater intensity of auspicious karma fruition) is the state of Prāyogya Labdhi. To attain extreme volitional purity by means of low tended activities etc. which definitely cause acquiring Right Faith for one Antarmuhūrta is Karaṇa Labdhi. Attainment of first four kinds of Labdhis do not necessarily ensure attainmant of Right Faith.

Anādimithyādṛṣṭi possesses only one wrong faith perception deluding karma and he attains subsidential Right Faith after subsidence of five types of karmas i.e. wrong faith karma with four kinds of Anantānubandhī passions of anger, pride, deceitfulness and greed. The duration of this type of Right Faith is an Antarmuhūrta. During this period, these karmas do not fruitify but remain in existence. On attainmant of this type of Right Faith, the Wrong Faith karma gets tri-furcated in to Mithyātva (Wrong Faith karma), Samyagmithyātva (Mixed Wrong Faith and Right Faith karmas) and Samyaktva Prakṛti (Right Faith with slaekness karma). On attainment of subsidential Right Faith the period of mundane wandering reduces to mere Ardha-Pudgala-Parāvartana (half embodiment time-cycle).

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के कारण
Causes of Manifestation of Right Faith

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।३।।

(तत्-निसर्गात्-अधिगमात्-वा।)

Tannisargādadhigamādvā. (3)

शब्दार्थ : **तत् –** वह (सम्यग्दर्शन); **निसर्गात् –** स्वभाव से; **अधिगमात् –** पर के उपदेश (आदि) से; **वा –** अथवा।

Meaning of Words : **Tat -** that (Right Faith); **Nisargāt -** by nature or by intution; **Adhigamāt** - aquiring knowledge through preaching by others, study etc; **Vā -** or.

सूत्रार्थ : वह सम्यग्दर्शन स्वभाव से अथवा पर के उपदेश या शास्त्राभ्यास आदि से उत्पन्न होता है।

English Rendering : That Right Faith is attained by nature (or intution) or by acquiring knowledge through preaching by others, study of scriptures etc.

टीका : सम्यग्दर्शन के उत्पत्ति की अपेक्षा दो भेद हैं – निसर्गज और अधिगमज। निसर्गज अर्थात् बिना उपदेश के, स्वभाव से पूर्व भव के संस्कार के कारण उत्पन्न होता है, जबकि अधिगमज बाह्य उपदेशपूर्वक उत्पन्न होता है। दोनों ही प्रकार के सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का अन्तरङ्ग कारण तो एक ही है – दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षय या क्षयोपशम। दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियाँ – मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति तथा चारित्र मोहनीय की अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ – इन सात (छह या पाँच) प्रकृतियों का जब उपशम, क्षय या क्षयोपशम हो तब सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। यह अन्तरङ्ग निमित्त है।

यहाँ यह जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है कि क्षायिक सम्यग्दर्शन तीर्थङ्कर, केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही प्रारम्भ होता है तब उसमें सम्यग्दर्शन का निसर्गज भेद न घटकर केवल अधिगमज भेद ही घट सकता है, फिर क्या कारण है कि आचार्यों ने अन्तरङ्ग कारणों का निर्देश करते हुए उपशम और क्षयोपशम के साथ क्षय का भी निर्देश किया है? इसका समाधान यह है कि पहली से तीसरी पृथिवी तक से आकर जो जीव तीर्थङ्कर होते हैं, उनके लिये क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये परोपदेश की आवश्यकता नहीं होती। अतः क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिये निसर्गज और अधिगमज दोनों भेद पाये जा सकते हैं।

चारों गतियों के सञ्ज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, साकार उपयोग वाले, पर्याप्तक जीवों को अधिगमज सम्यग्दर्शन बाह्य उपदेश आदि निमित्त रूप से कई प्रकार से प्राप्त हो सकता है। यथा, नरक गति में तीसरी पृथिवी तक धर्म श्रवण, जाति स्मरण और वेदना (दुःखानुभव) – ये तीन और चौथी से सातवीं पृथिवी तक जाति स्मरण और वेदना ये दो ही साधन हैं। तिर्यञ्च और मनुष्य गति में धर्म श्रवण, जाति स्मरण और जिनबिम्ब दर्शन ये तीन साधन हैं। देव गति में भवनत्रिक से लेकर बारहवें स्वर्ग तक धर्म श्रवण, जाति स्मरण, जिन महिमा दर्शन और देवर्द्धि दर्शन ये चार एवं आगे के तेरहवें से सोलहवें स्वर्ग तक देवर्द्धि दर्शन को छोड़कर शेष तीन और नव ग्रैवेयकों में जाति स्मरण तथा धर्म श्रवण ये दो ही साधन हैं। इससे आगे नव अनुदिशों एवं पाँच अनुत्तर स्वर्गों में केवल सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं।

यहाँ यह भी उल्लेख इष्ट है कि 'तिलोयपण्णत्ती' की गाथा 3000-3001 (प्राकृत गाथा) में सम्यक्त्व प्राप्ति के कारणों में तिर्यञ्च और मनुष्यों के लिये दूसरों के या स्वयं के भी सुख-दुःख देखकर भी सम्यक्त्व प्राप्ति को कारण बताया गया है।

Comments : With respect to attainment, Right Faith is of two types - Nisargaja (i.e. natural) and Adhigamaja (i.e. by external preachings). Nisargaja type is attained without any external preachings, due to fruition of previous birth bound karmas, as a natural instinct whereas Adhigamaja type is attained by means of external preachings. The internal cause of both types is the same i.e. subsidence, destruction or destruction-cum-subsidence of the perception deluding karmas. Right Faith is attained when there is subsidence, destruction or destruction-cum-subsidence of seven kinds (six or five kinds) of karmas i.e. three kinds of perception deluding karmas - Mithyātva (Wrong Faith karma), Samyagmithyātva (Mixed Right Faith and Wrong Faith karmas) and Samyaktva Prakṛti (Right Faith with slackness karma) and four kinds of Anantānubandhī conduct deluding karmas - anger, pride, deceitfulness and greed. This is the internal cause.

Here a question may arise that for attainment of Right Faith arising due to destruction of Karmas, proximity of Tīrthaṅkara or Kevalī (Omniscient) or Śrutakevalī (Scriptural Omniscient) is essential. As such only Adhigamaja type of Right Faith is possible. Then why have the Ācāryas included destructive type along with subsidential and destruction-cum-subsidence types as a means of attainment in internal causes? The answer is that the souls who migrate from first to third hellish earths & take birth as Tīrthankaras do not require anyone else's proximity for external preachings for attainment of destructive type of Right Faith. As such attainment of destructive type of Right Faith is possible by both types i.e. Nisargaja and Adhigamaja.

All mundane beings in all four life - courses having attained the capability of discrimination (possessing mind), five sense organs and completion of all their Paryāptis (physical vitalities) could attain Adhigamaja type of Right Faith through different kinds of external causes & preachings. For example, in the case of those hellish beings who are in first to third earth, causes for attainment are religious discourses, rememberances of the previous births and observance of the present mundane sufferings. For those in fourth to seventh hellish-earths, causes are only rememberances of the previous births and observances & feelings of mundane sufferings. In the life-courses of human beings and Triyañcas, only three causes consisting of rememberances of previous birth, religious preachings and paying obeisances with astonish-

ment to the Jina-Idols are available. For celestial beings, from Bhavanatrika (i.e. Bhavanavāsī, Vyantara and Jyotiṣka) to the twelfth heaven, there are four causes i.e. religious discourses, rememberances of the previous births, observances of Jina-grandeur and observance of the grandeur of the higher category celestial beings. For those in thirteenth to sixteenth heaven, the first three causes excepting the observance of grandeur of higher category celestial beings are available. For those residing in nine Graiveyakas, only two causes of religious discourses, and rememberances of the previous birth are available. In the remaining higher heavens of nine Anudiśa and five Anuttaras, only souls endowed with Right Faith take their births.

It may be mentional that according to 'Tiloyapaṇṇattī' scripture (Gāthā 3000-3001), it is mentioned that for those having human & Triyañca life-courses, there is an additional cause i.e. observance & feelings of mundane sufferings for attainment of Right Faith.

प्रयोजनभूत तत्त्व
Purposefull Realities

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।।४।।

(जीव-अजीव-आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षाः तत्त्वम्।)

Jīvājīvāsravabandhasaṁvaranirjarāmokṣāstattvam. (4)

शब्दार्थ : **जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः –** जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष; **तत्त्वम् –** (ये सात) तत्त्व हैं।

Meaning of Words : **Jīvājīvāsravabandhasaṁvaranirjarāmokṣāḥ -** Jīva, Ajīva, Āsrava, Bandha, Saṁvara, Nirjarā and Mokṣa; **Tattvam -** (are seven) Realities.

सूत्रार्थ : जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष – ये सात तत्त्व हैं।

English Rendering : Jīva (sentient), Ajīva (non-sentient), Āsrava (influx of karmas), Bandha (bondage of karmas), Saṁvara (stop-

page of influx of karmas), Nirjarā (partial dissociation of karmas) and Mokṣa (salvation) are seven Realities.

टीका : इस सूत्र में आचार्य महाराज ने सात तत्त्वों के नाम दर्शाये हैं। वे हैं – **जीव –** जिसमें चेतना (ज्ञान व दर्शन शक्ति) हो; **अजीव –** जिसमें चेतना न हो; **आस्रव –** शुभ एवं अशुभ कर्मों का आत्मा में आने का प्रकार या द्वार; **बन्ध –** आत्मप्रदेश और कर्मों का एक क्षेत्रावगाह होना; **संवर –** आस्रव का रोकना; **निर्जरा –** कर्मों का एकदेश क्षय होना; **मोक्ष –** समस्त कर्मों का क्षय हो जाना।

जीव में चेतना पाई जाती है। उसके तीन भेद हैं – कर्म फल चेतना, कर्म चेतना और ज्ञान चेतना। एकेन्द्रिय जीवों में केवल कर्म फल चेतना पाई जाती है। त्रस जीवों में कर्म फल चेतना और कर्म चेतना दोनों पाई जाती हैं तथा जो दश प्राणों से अतीत हो चुके हैं, ऐसे सिद्ध भगवान् में ज्ञान चेतना पाई जाती है। कुछ आचार्यों के मतानुसार ऐसी ज्ञान चेतना सयोग केवली भगवान् में भी पाई जाती है, क्योंकि उनके घातिया कर्मों के क्षय हो जाने से वे क्षायोपशमिक ज्ञान रूप इन्द्रिय ज्ञानों से रहित हो चुके हैं।

Comments : In this Sūtra, Ācārya Mahārāja has given the names of seven Tattvas (Realities). These are - **Jīva (Soul) -** that which is sentient; **Ajīva (Non-soul) -** that which is in-sentient; **Āsrava (In-flux) -** of auspicious & inauspicious karmas in to the soul; **Bandha (Bondage) -** mutual intermingling of soul's space-points and karmas; **Saṁvara (Stoppage of influx) -** stoppage of influx of karmas; **Nirjarā (Partial dissociation) -** partial dissociation of karmas and **Mokṣa (Salvation) -** annihilation of all karmas.

Soul is characterized by consciousness. It is of three kinds - Karma Fala Cetanā (consciousness of karmic consequences), Karma Cetanā (consciousness of experience of actions) and Jñāna Cetanā (cognitive consciousness). Souls having only one sense organ possess only Karma Fala Cetanā. Trasa Jīvas possess both Karma Fala Cetanā and Karma Cetanā. Liberated beings who are free from all the ten physical vitalities (Prāṇa) enjoy Jñāna Cetanā. Some Ācāryas are of the opinion that embodied Omniscients (Sayoga Kevalī) also enjoy Jñāna Cetanā as on annihilation of their destructive karmas (Ghātiyā karmas), they are free from experience of sense-organs-generated knowledge which was the result of the fruition of their destructive-cum-subsidential (Kṣayopaśama) karmas.

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ।।५।।

(नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतः तत्-न्यासः।)

Nāmasthāpanādravyabhāvatastannyāsaḥ. (5)

शब्दार्थ : **नामस्थापनाद्रव्यभावतः –** नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव से; **तत् –** उन (सात तत्त्वों तथा सम्यग्दर्शन आदि) में; **न्यासः –** न्यास (लोक व्यवहार या निक्षेप होता है।)

Meaning of Words : **Nāmasthāpanādravyabhāvataḥ -** by name, representation, substance, thoughts; **Tat -** in those (seven Realities and Right Faith etc.); **Nyāsaḥ -** installation of or public dealings.

सूत्रार्थ : नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव (चार प्रकार) से उन (सात तत्त्वों और सम्यग्दर्शन आदि) का न्यास यानी निक्षेप या लोक व्यवहार होता है।

English Rendering : These (seven Realities and Right Faith etc.) are installed or used in public dealings by name, representation, substance and (present condition of) thoughts.

टीका : नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप से सम्यग्दर्शन आदि और जीव आदि सात तत्त्वों का न्यास अर्थात् निक्षेप होता है।

नाम आदि के द्वारा वस्तु में भेद करने के उपाय को न्यास या निक्षेप कहते हैं। प्रमाण और नय के अनुसार ज्ञान प्राप्ति को प्रचलित लोक व्यवहार में निक्षेप कहते हैं। अनिर्णीत वस्तु को निर्णीत करने वाला निक्षेप कहलाता है, अथवा अव्यवस्था का जो निराकरण करे, वह निक्षेप कहलाता है।

नाम–निक्षेप – गुण, जाति, द्रव्य और क्रिया की अपेक्षा के बिना ही इच्छानुसार किसी का नाम रखने को नाम निक्षेप कहते हैं। जैसे, किसी का नाम महावीर हो, परन्तु वह शक्ति में क्षीण है, फिर भी लोक व्यवहार चलाने के लिये उसका नाम महावीर रख लिया है।

स्थापना–निक्षेप – धातु, काष्ठ, पाषाण आदि की प्रतिमा तथा अन्यान्य पदार्थों में 'वह यह है' – इस प्रकार की स्थापना करना स्थापना निक्षेप है। स्थापना

निक्षेप के दो भेद हैं – तदाकार स्थापना और अतदाकार स्थापना। जिस पदार्थ का जैसा आकार हो, उसमें उसी आकार की स्थापना करना तदाकार स्थापना है। जैसे, तीर्थङ्कर प्रतिमा में तीर्थङ्कर की स्थापना या मान्यता करना। भिन्न आकार वाले पदार्थों में किसी भिन्न आकार वाले की स्थापना या मान्यता करना अतदाकार स्थापना है। जैसे, शतरञ्ज के गोठों में राजा, मन्त्री आदि की स्थापना करना।

द्रव्य–निक्षेप – भूत या भविष्यत् पर्याय की मुख्यता लेकर वर्तमान में कहना द्रव्य निक्षेप है। जैसे, पहले कभी पूजा करनेवाले पुरुष को वर्तमान में पुजारी कहना या भविष्य में राजा होने वाले राजपुत्र को राजा कहना।

भाव–निक्षेप – केवल वर्तमान पर्याय की अपेक्षा से अर्थात् जो पदार्थ जैसा है, उसको उसी रूप में कहना भाव निक्षेप है। जैसे, काष्ठ को काष्ठ अवस्था में काष्ठ, आग होने पर आग और कोयला होने पर कोयला कहना।

नाम निक्षेप में पूज्य या अपूज्य का व्यवहार नहीं होता, लेकिन स्थापना निक्षेप में पूज्य–अपूज्य का व्यवहार होता है। यही दोनों में अन्तर है।

Comments : Right Faith etc. and seven Realities etc. are denominated in day to day dealings by the terms Nāma (name), Sthāpanā (representation), Dravya (substance) and Bhāva (thought-activity).

The method or the process of assigning a name to an object for facilitating social interaction is known as Nyāsa or Nikṣepa (installation). In the prevailing social-interactions, acquisition of knowledge by means of Pramāṇa (comprehensive knowledge) and Nayas (stand points) is known as Nikṣepa.

That which brings a decisive state of a thing having indecisive state is termed as Nikṣepa or that which establishes an order in the state of disorder is known as Nikṣepa.

Nāma Nikṣepa (Name Installation) - To assign a name to an object without any consideration of its virtues, class, substance & activities as a matter of one's free-will is known as Nāma Nikṣepa. For example, some one is named as Mahāvīra-may be physically very weak but for social interactions he is named as Mahāvīra.

Sthāpanā Nikṣepa (Representation Installation) - Installation of idols and other similar things made of metal, wood, stone etc. to make it known as 'This is that' is Sthāpanā Nikṣepa. It is of two kinds -

Tadākāra Sthāpanā (structurally similar installation) and Atadākāra Sthāpanā (dissimilar installation). To have exact similarity of an object in the installation is known as Tadākāra Sthāpanā like installation of a Tīrthaṅkara in an idol of Tīrthaṅkara. To install or to treat something dissimilar of the installation is Atadākāra Sthāpanā such as to imagine a king or minister in markers while playing chess.

Dravya Nikṣepa (Substance Installation) - To characterize something which may be attained in future or which was attained in the past is Dravya Nikṣepa. For example, to call someone as Pujārī (worshipper) as he used to worship in the past or to call a crown prince as king as he would become the king in future.

Bhāva Nikṣepa (Thought Activity Installation) - The installation of a substance which takes into account only present state is Bhāva Nikṣepa. For example, to call a piece of wood as wood, when that catches fire, to call it fire and when it becomes coal, to call it coal.

In Nāma Nikṣepa, there is no consideration of attributes of the installation being made but in Sthāpanā Nikṣepa, the attributes are established in the installation being made. This is the only difference between the two.

तत्त्वों को जानने के साधन
Means of attaining Knowledge of Realities

प्रमाणनयैरधिगमः ।।६।।

(प्रमाण-नयैः अधिगमः।)

Pramāṇanayairadhigamaḥ. (6)

शब्दार्थ : **प्रमाणनयैः –** प्रमाण (और) नयों से; **अधिगमः –** ज्ञान (तत्त्वों तथा सम्यग्दर्शन आदि।

Meaning of Words : **Pramāṇanayaiḥ -** by comprehensive knowledge and standpoints; **Adhigamaḥ -** (Right) Knowledge (of Realities, Right Faith etc.).

सूत्रार्थ : प्रमाण और नयों से (तत्त्वों और सम्यग्दर्शन आदि का) ज्ञान होता है।

English Rendering : Knowledge (of Realities, Right Faith etc.) is attained by Pramāṇa (Comprehensive knowledge) and by Nayas (Standpoints).

टीका : प्रमाण और नय दोनों से ही ज्ञान होता है। अन्तर यह है कि नय वस्तु के एक देश या एक अंश का बोध कराता है और प्रमाण सम्पूर्ण धर्मों को अभेद रूप से बताता है।

प्रमाण के दो भेद हैं – प्रत्यक्ष और परोक्ष। आत्मा जिस ज्ञान के द्वारा किसी बाह्य निमित्त की सहायता के बिना ही पदार्थों को स्पष्ट जाने, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद हैं – सकल प्रत्यक्ष और विकल प्रत्यक्ष। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है, क्योंकि वह त्रिकालविषयक समस्त पदार्थों को विषय करने वाला, अतीन्द्रिय, अक्रमवृत्ति, व्यवधान से रहित और आत्मा मात्र से प्रवृत्त होने वाला है। जो ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में परिमित तथा बहुत प्रकार के भेद-प्रभेदों से युक्त होता है, वह विकल प्रत्यक्ष है। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष हैं। जो इन्द्रियों, मन, प्रकाश आदि की सहायता से पदार्थों को एक देश जाने, उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं। यह भी दो प्रकार का है – मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

जो पदार्थ के एक देश को या एक अंश को विषय करे या जाने, उसे नय कहते हैं अथवा वक्ता के अभिप्राय को भी नय कहते हैं। नय के दो भेद हैं – द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक।

द्रव्यार्थिक नय – जो पर्याय को गौण कर मुख्य रूप से द्रव्य को ग्रहण करे, ज्ञान कराए, वह द्रव्यार्थिक नय है। वह वस्तु के जानने का एक दृष्टिकोण है जिसमें वस्तु के विशेष रूपों से युक्त सामान्य रूप को दृष्टिङ्गत किया जाता है। जैसे, मनुष्य, देव, तिर्यञ्च आदि विविध रूपों में रहने वाले एक जीव सामान्य को देखना या कहना कि ये सब जीव द्रव्य हैं।

पर्यायार्थिक नय – जो द्रव्य को गौण करके मुख्य रूप से पर्याय को ग्रहण करे, ज्ञान कराए, वह पर्यायार्थिक नय है। जैसे 'कुण्डल लाओ' – यह कहने पर व्यक्ति कड़ा आदि नहीं लाता, क्योंकि कुण्डल रूप पर्याय ही उसे इष्ट है। सारा लोक व्यवहार इसी नय की दृष्टि से चलता है।

प्रमाण के और भी दो भेद हैं – स्वार्थ और परार्थ। श्रुतज्ञान को छोड़कर शेष सब ज्ञान स्वार्थ प्रमाण हैं। श्रुतज्ञान दोनों प्रकार – स्वार्थ और परार्थ प्रमाण है। ज्ञानात्मक श्रुत प्रमाण को स्वार्थ प्रमाण और वचनात्मक श्रुत प्रमाण को परार्थ प्रमाण कहते हैं।

Comments : Knowledge is accomplished by both Pramāṇa (comprehensive knowledge) and Nayas (standpoints); difference between the two is that Nayas comprehend knowledge partially whereas Pramāṇa comprehends all attributes of a thing without any reservation.

Pramāṇa has two divisions **-** Pratyakṣa (direct) and Parokṣa (indirect). Clear knowledge of the substances perceived by the soul without any external help or aid is direct comprehensive knowledge. Direct comprehensive knowledge is of two kinds - Sakala Pratyakṣa (absolute direct) and Vikala Pratyakṣa (non-absolute direct). Omniscience is absolute direct knowledge as it comprehends all objects of the universe existing in all the three times (i.e. past, present & future) without any assistance of sense organs & mind, manifesting in non-sequential way without any obstacle or hinderance and without immediate proximity of substances to soul. That knowledge which manifests having certain limitations of substances, areas, time and thought-activities and is of several kinds and sub-kinds is Vikala Pratyakṣa (non-absolute direct). Clairvoyane and mind reading knowledge are Vikala Pratyakṣa.That knowledge which comprehends substances partially or only a part of the total with the help of sense organs, mind, light etc. is the indirect comprehensive knowledge. It is also of two kinds - sensory knowledge and scriptural knowledge.

That which ascertains knowledge of a part of total attributes of an object is Naya or standpoint, or the intent or the viewpoint of the speaker is also called Naya. Nayas are also of two kinds - Dravyārthika Naya (substan-cial standpoint) and Paryāyārthika Naya (modal standpoint).

Dravyārthika Naya - That which prominantly considers a substance as a whole treating modes as secondary is Dravyārthika Naya. It is a kind of a view-point in which only general attributes of a thing are taken in to consideration without its special attributes. For example to state or consider all human beings, celestial beings, Tiryañcas as Jīvas.

Paryāyārthika Naya - That which prefers ever-changing mode and or condition of a substance, treating substance as secondary is

Paryāyārthika Naya. For example, if it is said 'Bring the ear-ring', one brings only the ear-ring and not the bangle etc. as here the mode of the substance is given the prominence. Entire social interaction is made through this Naya.

Pramāṇa has other two divisions also - Svārtha (i.e. for one-self) and Parārtha (i.e. for others). Except scriptural knowledge, all other divisions of knowledge are Svārtha. Scriptural knowledge is both Svārtha and Parārtha. Scriptures in the form of knowledge constitute Svārtha Pramāṇa and in the form of words constitute Parārtha Pramāṇa.

पदार्थों को जानने के अन्य उपाय

Other Methods of Knowing Substances

निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थितिविधानतः ।।७।।

(निर्देश-स्वामित्व-साधन-अधिकरण-स्थिति-विधानतः।)

Nirdeśasvāmitvasādhanā(a)dhikarṇasthitividhānataḥ. (7)

शब्दार्थ : **निर्देशस्वामित्वसाधनाऽधिकरणस्थितिविधानतः –** निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति (और) विधान से।

Meaning of Words : **Nirdeśasvāmitvasādhanā(a)dhikaraṇasthitividhānataḥ -** description or definition, ownership, cause, substratum, duration (and) division.

सूत्रार्थ : निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से भी जीव आदि तत्त्व और सम्यग्दर्शन आदि का व्यवहार होता है। ये छह अनुयोगद्वार कहलाते हैं।

English Rendering : (Knowledge of Realities like soul, Right Faith etc. is also acquired by) description or definition, ownership, cause, substratum, duration and division which are known as six gate-ways of exposition.

टीका : **निर्देश –** जिस वस्तु को हम जानना चाहते हैं, उसका स्वरूप वर्णन करना।

स्वामित्व – स्वामित्व का अर्थ उस वस्तु के स्वामी से है। यथा, सम्यग्दर्शन का स्वामी जीव है।

साधन – वस्तु के उत्पन्न होने के कारण को साधन कहते हैं। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दो कारण होते हैं। अन्तरङ्ग कारण तो दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षयोपशम या क्षय है और बाह्य कारण अलग-अलग गतियों में अलग-अलग हैं। इनका उल्लेख सूत्र तीन की टीका में किया गया है।

अधिकरण – अधिष्ठान या आधार को अधिकरण कहते हैं। सम्यग्दर्शन का अन्तरङ्ग अधिकरण या आधार तो आत्मा ही है, क्योंकि सम्यग्दर्शन उसी को होता है; और बहिरङ्ग आधार त्रसनाड़ी है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव त्रसनाड़ी में ही रहते हैं, उसके बाहर नहीं।

स्थिति – किसी क्षेत्र में स्थित पदार्थ की काल मर्यादा निश्चित करना स्थिति है। उपशम सम्यक्त्व की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट स्थिति छ्यासठ सागरोपम है। क्षायिक सम्यक्त्व की जघन्य स्थिति संसारी जीव की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त है और संसारी जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति आठ वर्ष एक अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटि अधिक तैंतीस सागरोपम और मुक्त जीव की अपेक्षा सादि-अनन्त है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उसी भव से, तीसरे भव से या चौथे भव से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विधान – विधान के द्वारा सम्यग्दर्शन आदि के प्रकारों की गिनती की जाती है। सम्यग्दर्शन तो एक ही प्रकार का होता है। लेकिन उसकी उत्पत्ति, भेद की अपेक्षा अनेक प्रकार से भेद किये जाते हैं। जैसे - सम्यग्दर्शन के दो भेद निसर्गज और अधिगमज; सराग और वीतराग; निश्चय और व्यवहार। निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शन का उल्लेख सूत्र तीन की टीका में और सराग और वीतराग सम्यग्दर्शन का उल्लेख सूत्र दो की टीका में किया जा चुका है। राग आदि से भिन्न निज शुद्धात्मा ही उपादेय है - ऐसी रुचि या श्रद्धान होना निश्चय सम्यग्दर्शन है। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के प्रति श्रद्धान होना अथवा जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गये सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन को सराग सम्यग्दर्शन भी कहते हैं। औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक के भेद से सम्यग्दर्शन के तीन भेद हैं। शब्दों की अपेक्षा सम्यग्दर्शन सङ्ख्यात प्रकार का है तथा श्रद्धान करने वालों की अपेक्षा असङ्ख्यात प्रकार का है और श्रद्धान करने योग्य पदार्थों की अपेक्षा अनन्त प्रकार का है। इसी प्रकार ज्ञान और चारित्र में तथा

जीव और अजीव आदि पदार्थों में भी आगम के अनुसार यह निर्देश आदि विधि यथायोग्य लगा लेना चाहिए।

Comments : **Nirdeśa (Description or definition) -** To describe or define a thing which we wish to understand is called Nirdeśa.

Svāmitva (Ownership) - Svāmitva means ownership of the things; for example, owner of Right Faith is the Jīva.

Sādhabna (Cause or means) - The cause or means of origin of a thing is known as Sādhana; i.e. for manifestation of Right Faith, internal and external are two causes. The internal cause is the subsidence or destruction-cum-subsidence or destruction of Right Faith deluding karma. The external causes for manifestation are different for different life-courses. These are already described under the comments of Sūtra three.

Adhikaraṇa (Substratum) - Location or base is known as Adhikaraṇa. The internal base of the Right Faith is only the soul as it manifests only in soul and external base is Trasa Nāḍī (i.e. Mobile channel of universe) as the Right Believers are found in this channel and not outside it.

Sthiti (Duration) - To ascertain the duration of existence of a substance in a particular area is its 'Sthiti'. The minimum duration of destructive-cum-subsidential (Kṣāyopaśama) type of Right Faith is one Antarmuhūrta and maximum is sixty six Sāgaropama. The minimum duration of a mundane being of destructive type Right Faith is one Antarmuhūrta and maximum is thirty-three Sāgaropama & two Pūrvakoṭis less by eight years and one Antarmuhūrta and in case of liberated beings, it is endless. A Right Believer bestowed with destructive type Right Faith attains liberation in the same life-course, third life-course or the fourth life-course,

Vidhāna (Divisions or kinds) - By Vidhāna, we can determine the kinds or types of Right Faith. Although Right Faith is only of one kind but from its origination point of view, it is of several kinds. For example the two kinds of Right Faith are Nisārgaja and Adhigamaja; Sarāga and Vītarāga; Niścaya and Vyavahāra; Description of Nisargaja & Adhigamaja Right Faith is given under comments of Sūtra three and that of Sarāga and Vītarāga under comments of Sūtra two. To have

inclination or faith about pure nature of one's soul free from attachment etc. is the Niścaya (standard) Right Faith. To have faith in true Deva, Śāstra & Guru or to have firm belief in the nature of seven Tattvas (Realities) as enumerated by Jinendra Bhagavān is Vyavahāra (practical) type Right Faith. Practical Right Faith is also termed as Sarāga Right Faith.

Right Faith is also of three kinds - subsidential, destructive and destructive-cum-subsidential. When considered in the context of words, Right Faith is of countable kinds; in the context of those having faith, it is of innumerable kinds and in the context of substances worthy of having faith, it is of infinite kinds.

In the similar way, description etc. in the case of Right Knowledge and Right conduct, soul, non-soul etc. are to be understood in conformity with the scriptural directives.

पदार्थों को जानने के भिन्न उपाय
Different Methods of Knowing Substances

सत्सङ्ख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च ।।८।।

(सत्-सङ्ख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-काल-अन्तर-भाव-अल्पबहुत्वैः च।)

Satsaṅkhyākṣetrasparśanakālāntarabhāvālpabahutvaiśca. (8)

शब्दार्थ : **सत्सङ्ख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैः –** सत्, सङ्ख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव (और) अल्पबहुत्व से; **च –** और।

Meaning of Words : **Satsaṅkhyākṣetrasparśanakālāntarabhāvālpabahutvaiśca -** existence, number (enumeration), place or abode, extent or space, time, interval of time, thought-activity (i.e. volitions) (and) reciprocal comparision.

सूत्रार्थ : सत्, सङ्ख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व, इन (आठ अनुयोगों) के द्वारा भी सम्यग्दर्शन अथवा जीव आदि तत्त्वों का ज्ञान होता है।

English Rendering : The Right Faith or the Realities like soul etc. are also known by their existence, number or enumeration, place or abode, extent of space, time, interval of time, thought-activity and reciprocal comparision (eight expositions).

टीका : **सत्–** वस्तु के अस्तित्व को सत् कहते हैं। गति, इन्द्रिय आदि चौदह मार्गणाओं में सम्यग्दर्शन आदि कहाँ हैं, कहाँ नहीं हैं, यह सूचित करने के लिये सत् का ग्रहण किया जाता है।

सङ्ख्या – सङ्ख्या का अर्थ है भेद, गणना या गिनती।

क्षेत्र – वर्तमान काल सम्बन्धी निवास का नाम क्षेत्र है। किस गुणस्थान या मार्गणा–स्थान वाले जीव इस लोक में कहाँ और कितने भाग में पाये जाते हैं, यह जानकारी क्षेत्र के द्वारा मिलती है। सामान्य से मिथ्यादृष्टि जीव सभी लोक में पाये जाते हैं। सासादन गुणस्थान से अयोग केवली जिन (दूसरे से चौदहवें गुणस्थान) तक के जीव लोक के असङ्ख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र में पाये जाते हैं।

स्पर्शन – वस्तु के तीनों काल सम्बन्धी निवास को स्पर्शन कहते हैं। जैसे, कोई जीव तप कर मनुष्य लोक से अच्युत कल्प में उत्पन्न हुआ। फिर वहाँ से च्युत होकर पुनः मनुष्य लोक में उत्पन्न हुआ। उस जीव का त्रिकाल विषयक गमनागमन छह राजू हुआ। इस प्रकार यथायोग्य स्पर्शन सभी में लगाना चाहिए।

काल – वस्तु के ठहरने की मर्यादा को काल कहते हैं। मिथ्यादृष्टि का नाना जीवों की अपेक्षा सर्व काल है और एक जीव की अपेक्षा काल के तीन भेद हैं। किसी जीव का काल अनादि और अनन्त है, किसी का अनादि और सान्त है तथा किसी का सादि और सान्त है। सादि और सान्त काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है। क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान पर्यन्त नाना जीवों की अपेक्षा सर्व काल है। एक जीव की अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक तैंतीस सागरोपम है। संयतासंयत का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। प्रमत्त संयत और अप्रमत्त संयत का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। चारों क्षपकों एवं अयोग केवलियों का नाना जीवों एवं एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सयोग

केवलियों का नाना जीवों की अपेक्षा सर्व काल है। एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि प्रमाण है। चारों उपशमकों का नाना जीवों एवं एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल एक समय एवं उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। चारों क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियों (चौथे से सातवें गुणस्थान) में भी क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के समान जानना चाहिए।

औपशमिक सम्यग्दृष्टियों में असंयत सम्यग्दृष्टि एवं संयतासंयतों में नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट काल पल्योपम के असङ्ख्यातवें भाग प्रमाण है। एक जीव की अपेक्षा असंयत सम्यग्दृष्टि एवं संयतासंयत का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। प्रमत्त संयत एवं अप्रमत्त संयत और उपशमकों का नाना जीवों एवं एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल एक समय एवं उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

अन्तर – विरह काल को अन्तर कहते हैं। आशय यह है कि कोई एक कार्य विशेष हो चुकने पर जितने काल तक उसकी प्राप्ति नहीं होती, उस काल को अन्तर कहते हैं। जीवों के गुणस्थान प्राप्ति या किसी स्थान विशेष में उनके जन्म–मरण आदि के अन्तर का विचार किया जाता है।

भाव – औपशमिक आदि परिणामों को भाव कहते हैं। सम्यक्त्व की तीन अवस्थायें हैं – औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक।

अल्पबहुत्व – अन्य पदार्थों की अपेक्षा किसी वस्तु की हीनाधिकता के वर्णन को अल्पबहुत्व कहते हैं। जैसे, यह इसकी अपेक्षा अल्प है और यह अधिक है, इत्यादि। इसके द्वारा सत्, सङ्ख्या, क्षेत्र आदि की अपेक्षा भेद को प्राप्त हुए जीव आदि की परस्पर सङ्ख्या विशेष को जाना जाता है।

Comments : **Sat -** 'Sat' indicates existence. 'Sat' is to denote the existence or non-existence of Right Faith by means of fourteen classifications of the soul after due investigation such as life-course, sense-organs etc. known as Mārgaṇā.

Saṅkhyā (Number) - 'Saṅkhyā' is enumeration of division or classes.

Kṣetra (Place or abode) - Kṣetra denotes the present abode. One can get information about the place and location of the Jīva in a particular stage of spiritual development (i.e. Guṇasthāna) and also by

means of Mārgaṇā in the Loka. Jīvas from Sāsādana stage of spiritual development up to Vibrationless Omniscient stage of spiritual development (i.e. from 2nd to 14th Guṇasthāna) are present in innumerable parts of the universe.

Sparśana (Extent of space) - It is the extent of space or pervasiveness i.e. the abode of substances, relating to the past, the present and the future. For example, a person as a result of his penance in human life-course takes his next birth in Acyuta Kalpa of heaven and after completing his life tenure there, again takes birth in Manuṣya-Loka. Thus the extent of space covered by the Jīva in such a migration and re-migration is six Rājū. In this way, such extent can be known in other cases also.

Kāla (time) - Limit of existence of a substance or a thing in a particular position for a period is known as Kāla. Kāla with reference to the many Wrong Believers is all time. With reference to a Jīva, Kāla is of three kinds. Kāla of some Jīva is beginningless & infinite, some have beginningless and finite and some have beginning and finite. In the context of beginning and finite, the minimum Kāla is one Antarmuhūrta and maximum time is a little less than Ardha Pudgala Parāvartana Kāla (half embodied time cycle). In the context of those vowless Right Believers having Destructive Right Faith (Kṣāyika Avirata) up to vigilantly restrained saints (Apramatta Saṁyata) in respect of many Jīvas, the Kāla is all time. In the context of vowless Right Believers the minimum Kāla is one Antarmuhūrta and maximum is thirty-three Sāgaropamas & a little more. The minimum Kāla in respect of those having partial vows (Saṁyatāsaṁyata) is one Antarmuhūrta and maximum is a little less than one Pūrvakoṭi. For Pramatta and Apramatta Saṁyata (in sixth and seventh Guṇasthāna), the minimum Kāla is one Samaya and maximum is one Antarmuhūrta. For the saints with the Destructive Right Faith ladder engaged in the four stages of upward spiritual development i.e. 8th, 9th, 10th & 12th Guṇasthāna and vibrationless omniscients in 14th Guṇasthāna, the minimum and maximum Kāla, in respect of one and many Jīvas is one Antarmuhūrta. For embodied Omniscients (in 13th Guṇasthāna), in the context of many Jīvas, the Kāla is all times. For one Jīva, the minimum is one Antarmuhūrta and maximum is a little less than one Pūrvakoṭi.

For all the four stages of spiritual development by those saints who are moving upward by subsidising their karmas i.e. Upaśamaka in the context of many and one Jīva, the minimum Kāla is one Samaya and maximum is one Antarmuhūrta. For Right Believers having Destructive-cum-subsidential (Kṣāyopaśama) Right Faith (in 4th to 7th Guṇasthāna), the Kāla is the same as for those who have attained Destructive type of Right Faith. Right Believers having supressional Right Faith without having any vows and those having partial vows, in the context of many Jīvas, the minimum Kāla is one Antarmuhūrta and maximum is innumerablth part of a Palyopama. In the context of one Jīva, having vowlessness and partial vows, the minimum and maximum Kāla is one Antarmuhūrta. For Pramatta Saṁyata and Apramatta Saṁyata and those in the ascending ladder of spiritual development with subsidence of Karmas in respect of many and one Jīva, the minimum Kāla is one Samaya and maximum is one Antarmuhūrta.

Antara (Time Interval) - It is the interval of time required for regaining the previous position of an event. It is considered for determinations of spiritual development and for births and rebirths at a particular place.

Bhāva (Thought-activity) - Subsidential volitional feelings etc. types are known as Bhāva. Right Faith has three stages of such i.e. Bhāvas-supressional, destructive-cum-subsidential and destructive. (Auopaśamika, Kṣāyopaśamika & Kṣāyika)

Alpabahutva (Reciprocal comparision) - It is a distinction based on comparision i.e. whether less or more between the two; for example, to state that it is less or more as compared to that. By this one can have distinction between various kinds of Jīvas in the context of existence, numbers, abode etc.

सम्यग्ज्ञान के भेद
Kinds of Right Knowledge

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम् ।।९।।

(मति-श्रुत-अवधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम्।)

Matiśrutāvadhimanaḥparyayakevalāni Jñānam. (9)

शब्दार्थ : **मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि –** मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान (और) केवलज्ञान; **ज्ञानम् –** (ये पाँच) ज्ञान हैं।

Meaning of Words : **Matiśṛutāvadhimanaḥparyayakevalāni -** sensory knowledge, scriptural knowledge, knowledge such as clair-voyance, mind-reading- knowledge (and) Omniscience; **Jñānam -** knowledge (of five kinds).

सूत्रार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं।

English Rendering : (Right) Knowledge is of five kinds - sensory knowledge, scriptural knowledge, knowledge such as clair-voyance, mind-reading-knowledge and Omniscience.

टीका : बाह्य और अन्तरङ्ग दोनों निमित्तों के मिलने पर चेतना गुण का जो साकार परिणमन होता है, उसको ज्ञान कहते हैं। इन्द्रिय और मन के द्वारा पदार्थों का जो ज्ञान होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं। इसे अभिनिबोध ज्ञान भी कहते हैं। मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के अवलम्बन से तत्सम्बन्धी पदार्थ या किसी अन्य पदार्थ के विशेष ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुये रूपी पदार्थ को प्रत्यक्ष जानने वाले ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं।

जो दूसरे के मन का अवलम्बन लेकर उस मन में स्थित रूपी पदार्थों को स्पष्ट रूप से जान लेता है, वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। यह ज्ञान केवल मुनियों को ही होता है। वह दो प्रकार का है – ऋजुमति और विपुलमति।

सब द्रव्यों की अनन्त पर्यायों को एक साथ स्पष्ट जानने वाले ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं।

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि सूत्र में 'मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि' बहुवचन का प्रयोग है; लेकिन इसके साथ 'ज्ञानम्' एकवचन का प्रयोग किया गया है। यह दर्शाता है कि ज्ञान एक ही गुण है और मति-श्रुत आदि उस ज्ञान गुण की विशेष पर्यायें हैं।

यद्यपि ज्ञान सब ही पूज्य हैं, तो भी केवलज्ञान महान् है। वह जीवों को सबसे अन्त में प्राप्त होता है, इसलिये उसे अन्त में रखा है। मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान

केवल संयमी के ही होते हैं, इसलिये दोनों का सामीप्य है। अवधिज्ञान को केवलज्ञान से दूर रखा है, क्योंकि वह संयमी और असंयमी दोनों को होता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तो प्रायः सभी संसारी प्राणियों में पाये जाते हैं। ये दोनों परोक्ष ज्ञान हैं, अतः उन्हें सबसे पहले रखा है।

Comments : As a result of the combination of internal and external causes, transformation of consciousness in to a concrete shape is called Jñāna or knowledge. That which knows the objects through sense organs and mind is known as sensory knowledge. It is also called Abhinibodha Jñāna. On the basis of sensory knowledge of an object, specific or detailed knowledge about it or other objects related to it, is known as scriptural knowledge. That direct knowledge which knows physical form of things with certain limitations of Dravya (substance), Kṣetra (space), Kāla (time) and Bhāva (thought activity) is known as knowledge such as clairvoyance.

That direct mental knowledge through which one clearly knows the thoughts or ideas about physical things present in others' mind, by taking support of his mind, is known as mind-reading-knowledge. Such a knowledge manifests only to the ascetics. It is of two kinds - Ṛjumati and Vipulamati.

That knowledge which knows clearly all the substances and all their modes simultaneously is known as Omniscience.

It may be mentioned here that in the Sūtra, the plurality is observed in 'Matiśrutavadhimanaḥparyayakevalāni' but added to this is singular word 'Jñānam'. It indicates that knowledge is one composite attribute and its classifications as sensory, scriptural knowledge etc. are the specifice modifications of the same.

Although all kinds of knowledge is worthy of adoration, Omniscience is magnificent. It is the last one to manifest to Jīvas and therefore it is mentioned in the last. Manifestation of mind-reading-knowledge and Omniscience takes place to only those who follow restraint conduct or austerities and therefore, these two are kept close to each-other. Knowledge such as clairvoyance is kept away from Omniscience as it manifests to both with restrained and non-restrained conduct. Sensory knowledge and scriptural knowledge generally manifest to all Jīvas and therefore these are placed in the beginning of the Sūtra.

परोक्ष और प्रत्यक्ष ज्ञान
Indirect & Direct Knowledge

तत्प्रमाणे ।।१०।।

(तत्-प्रमाणे।)

Tatpramāṇe. (10)

शब्दार्थ : **तत् –** वह (उपर्युक्त पाँचों प्रकार का ज्ञान); **प्रमाणे –** दो प्रमाण रूप है।

Meaning of Words : **Tat -** that (all five types of knowledge stated earlier); **Pramāṇe -** is divided into two Pramāṇa forms.

सूत्रार्थ : पूर्व सूत्र में कहे गए पाँचों प्रकार का ज्ञान दो प्रमाण रूप है।

English Rendering : Five kinds of (total) knowledge stated in the previous Sūtra is in the form of two Pramāṇa.

टीका : प्रमाण दो प्रकार का है – प्रत्यक्ष प्रमाण और परोक्ष प्रमाण।

जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही केवल आत्म–सापेक्ष से उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है। जो ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से उत्पन्न होता है वह परोक्ष है।

न्याय शास्त्र में प्रत्यक्ष और परोक्ष का लक्षण भिन्न प्रकार से किया गया है। उसमें इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष और लिङ्ग तथा शब्दादिजन्य ज्ञान को परोक्ष कहा गया है। यहाँ तो मात्र आत्म–सापेक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष और इन्द्रिय तथा मन की अपेक्षा रखने वाले ज्ञान को परोक्ष माना गया है। तर्क ग्रन्थों में इसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है।

Comments : Pramāṇa is divided in the two kinds - direct Pramāṇa and indirect Pramāṇa.

That knowledge which manifests as a result of the capability of soul alone, without any assistance of senses and mind is direct one. The knowledge attained with the assistance of sense-organs and mind is the indirect one.

As per logic-scriptures, the characteristics of direct and indirect knowledge are stated differently. In that the knowledge attained through

senses is considered as direct and that generated through signs, words etc. is termed as indirect. Here the knowledge attained by soul alone is accepted as direct and that which needs assistance of sense organs and mind is termed indirect. This is termed as Sāṁvyavahārika Pratyakṣa (i.e. right sensual apprehension or perception) in logic-scriptures.

परोक्ष ज्ञान
Indirect Knowledge

आद्ये परोक्षम् ।।११।।

Ādye Parokṣam. (11)

शब्दार्थ : **आद्ये –** आदि के दो (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान); **परोक्षम् –** परोक्ष प्रमाण हैं।

Meaning of Words : **Ādye -** first two knowledge (i.e. sensory knowledge and scriptural knowledge); **Parokṣam -** are indirect knowledge.

सूत्रार्थ : पाँचों (सम्यक्) ज्ञानों में आदि के दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, परोक्ष प्रमाण हैं।

English Rendering : Out of five (right) knowledge, the first two types i.e. sensory knowledge and scriptural knowledge is indirect ones.

टीका : यहाँ 'आद्य' शब्द का द्विवचन में प्रयोग होने से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का ग्रहण किया है। दोनों ज्ञान 'पर' अर्थात् इन्द्रिय, मन, उपदेश, प्रकाश आदि की सहायता से होते हैं, इसलिये वे परोक्ष हैं।

जैसा सूत्र दस की टीका में कहा गया है कि जिस ज्ञान के उत्पन्न होने में आत्मा से भिन्न पर-वस्तु की अपेक्षा हो, उसको परोक्ष ज्ञान कहा गया है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में इन्द्रिय और मन, जो कि आत्मा से भिन्न पुद्गल रूप हैं, निमित्त हुआ करते हैं, अतएव इनको परोक्ष कहते हैं। विशेषता यह है कि इसमें से मतिज्ञान में इन्द्रिय और

मन दोनों ही निमित्त होते हैं लेकिन श्रुतज्ञान (हिताहित का विवेक रूप ज्ञान) में केवल मन ही निमित्त होता है। इस प्रकार का श्रुतज्ञान, मतिज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् ही होता है, इसलिये उपचार से उसमें इन्द्रियाँ भी निमित्त होती हैं।

Comments : Here the word 'Ādya' used as a plural indicates inclusion of both sensory knowledge and scriptural knowledge. Manifestation of both these knowledge depends on 'Para' i.e. external factors like senses, mind, preaching, light etc. and therefore they are indirect.

As explained under comments of Sūtra 10, that knowledge which manifests with the assistance of means other than the soul is indirect. Sensory knowledge and scriptural knowledge manifest with the assistance of sense organs and mind which are forms of Pudgalas different from soul, hence such knowledge is indirect. The speciality here is that in the manifestation of sensory knowledge the assistance of both sense organs and mind is taken but for manifestation of scriptural knowledge (knowledge required for discrimination), only assistance of mind is taken; but such scriptural knowledge manifests after manifestation of sensory knowledge and hence assistance of sense organs and mind is accepted for manifestation of scriptural knowledge also.

प्रत्यक्ष ज्ञान
Direct Knowledge

प्रत्यक्षमन्यत् ।।१२।।

(प्रत्यक्षम्-अन्यत्।)

Pratyakṣamanyat. (12)

शब्दार्थ : **प्रत्यक्षम् –** प्रत्यक्ष (प्रमाण); **अन्यत् –** शेष (तीन ज्ञान)।

Meaning of Words : **Pratyakṣam -** direct (knowledge); **Anyat -** remaining (i.e. three Right Knowledge).

सूत्रार्थ : शेष तीन ज्ञान यानी अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

English Rendering : The remaining three knowledge i.e. clairvoyance, mind-reading-knowledge and Omniscience are direct ones.

टीका : 'अक्ष' नाम आत्मा का है। जो ज्ञान आत्मा से ही उत्पन्न होता है तथा इन्द्रिय, प्रकाश, उपदेश आदि की सहायता नहीं लेता, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष के दो भेद हैं – विकल प्रत्यक्ष यानी एकदेश प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष। अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान विकल प्रत्यक्ष हैं तथा केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान क्षयोपशम निमित्तक हैं परन्तु केवलज्ञान पूर्ण आवरण रहित क्षायिक ज्ञान है।

Comments : 'Akṣa' denotes soul. The knowledge which is manifested only by soul without assistance of senses, light, preaching etc. is called direct knowledge. Direct knowledge is of two kinds - Vikala or partial and Sakala or complete. Clairvoyance and mind-reading-knowledge are Vikala Pratyakṣa (partial direct) and Omniscience is Sakala Pratyakṣa (complete direct).

Knowledge such as clairvoyance and mind-reading-knowledge manifest due to fruition of destruction-cum-supression of karmas but manifestation of Omniscience is an infinite knowledge manifestating after destruction of obstructive karmas.

मतिज्ञान के पर्यायवाची शब्द
Synonyms of Sensory Knowledge

मतिः स्मृतिः सञ्ज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।।१३।।

(मतिः स्मृतिः सञ्ज्ञा चिन्ता अभिनिबोधः इति अनर्थान्तरम्।)

Matiḥ Smṛtiḥ Sañjñā Cintā(a)bhinibodha Ityanarthāntaram. (13)

शब्दार्थ : **मतिः** – मति; **स्मृतिः** – स्मृति; **सञ्ज्ञा** – सञ्ज्ञा; **चिन्ता** – चिन्ता; **अभिनिबोध** – अभिनिबोध; **इति** – इस प्रकार; **अनर्थान्तरम्** – अन्य अर्थ नहीं हैं अर्थात् एकार्थवाची हैं।

Meaning of Words : **Matiḥ -** sensory knowledge; **Smṛtiḥ -** remembrance of a thing known but out of sight now; **Sañjñā -** recognition i.e. remembrance of a thing known earlier when the thing itself or something similar or markedly di-similar to it is present before the senses now; **Cintā -** induction i.e. reasoning or argument based upon observations; **Abhinibodha -** deduction i.e. reasoning by inference; **Iti -** in this manner; **Anarthāntaram -** are not different in meaning i.e. they are synonyms.

सूत्रार्थ : मति, स्मृति, सञ्ज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध इस प्रकार ये मतिज्ञान के ही पर्यायवाची या नामान्तर हैं।

English Rendering : Sensory knowledge, remembrance, recognition, induction and deduction are all synonyms and in this manner these are not different in meaning.

टीका : मति, स्मृति, सञ्ज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध मतिज्ञान के नामान्तर हैं। इनमें स्वभाव की अपेक्षा भेद हैं, लेकिन रूढ़ि से ये सब मतिज्ञान ही कहे जाते हैं। मति, स्मृति आदि ज्ञान मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होते हैं, इनका विषय भी एक ही है और श्रुत आदि ज्ञानों में ये भेद नहीं पाये जाते हैं, अतः ये सब मतिज्ञान के नामान्तर हैं।

पाँच इन्द्रिय और मन से जो अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान होता है, वह मति है। अतीत अर्थ के स्मरण करने को स्मृति कहते हैं। 'यह वही है' या 'यह उसके सदृश है' इसप्रकार पूर्व और उत्तर अवस्था में रहने वाला पदार्थ की एकता, सदृशता आदि के ज्ञान को सञ्ज्ञा (प्रत्यभिज्ञान) कहते हैं। किन्हीं दो पदार्थों में कार्य-कारण आदि सम्बन्ध के ज्ञान को चिन्ता (तर्क) कहते हैं। जैसे, अग्नि के बिना धूम नहीं होता। एक प्रत्यक्ष पदार्थ को देखकर उससे सम्बन्ध रखने वाले अप्रत्यक्ष अर्थ का ज्ञान करना अभिनिबोध है। जैसे, पर्वत में धूम को देखकर अग्नि का ज्ञान।

Comments : Mati, Smṛti, Sañjñā, Cintā, Abhinibodha etc. all are synonyms of sensory knowledge. Although the specific meaning of each is different but by usage, these all are said to be sensory knowledge as their intent is the same. Mati, Smṛti etc. knowledge are the result of manifestation of destructive-cum-subsidence (Kṣāyopaśama) of karmas obscuring sensory knowledge. Their intent being one and the same and as these differences are not found in scriptural knowledge etc. these are all synonyms of sensory knowledge.

Knowledge attained with the assistance of five senses and mind is termed as sensory knowledge. Rememberance of past events or a thing is 'Smṛti'. 'It is the same' or 'It is identical to that' such type of one-ness or similarity of the past and present events or things is termed as 'Sañjñā' (Pratyabhijñāna). The knowledge acquired by cause & effect of a particular event is 'Cintā' (Tarka). For example to have knowledge that fire does not exist without smoke. To have knowledge about invisible object by seeing a visible object is terned as 'Abhinibodha'. For example, observing smoke on a mountain, to have knowledge of fire there.

मतिज्ञान की उत्पत्ति के निमित्त
Causes of Manifestation of Sensory Knowledge

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।।१४।।

(तत् इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम्।)

Tadindriyānindriyanimittam. (14)

शब्दार्थ : **तत् –** वह (मतिज्ञान); **इन्द्रियानिन्द्रिय –** इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन); **निमित्तम् –** निमित्त से होता है।

Meaning of Words : **Tat -** that (sensory knowledge); **Indriyānindriya -** sense-organs and Anindriya i.e. mind; **Nimittam -** cause of.

सूत्रार्थ : वह मतिज्ञान इन्द्रिय (पाँचों इन्द्रियों) और अनिन्द्रिय यानी मन की सहायता से होता है।

English Rendering : That sensory knowledge is acquired with the help of sense organs (all five) and the mind.

टीका : आत्मा को इन्द्र तथा उसके चिह्न विशेष को इन्द्रिय कहते हैं। आशय यह है कि जानने की शक्ति तो आत्मा में स्वभाव से ही है किन्तु मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम होते हुए भी वह बिना बाह्य सहायता के स्वयं नहीं जान सकता। अतः अपने जिन चिह्नों के द्वारा वह पदार्थों को जानता है, उन्हें 'इन्द्रिय' कहते हैं। अथवा, आत्मा तो अमूर्त है, दिखाई नहीं देती। अतः जिन चिह्नों से आत्मा का अस्तित्व जाना जाता

है, उन्हें 'इन्द्रिय' कहते हैं, क्योंकि इन्द्रियों की प्रवृत्ति से ही आत्मा के अस्तित्व का पता लगता है।

यहाँ 'अनिन्द्रिय' का अर्थ है ईषत् इन्द्रिय। अर्थात् मन किञ्चित् इन्द्रिय है, पूरी तरह से इन्द्रिय नहीं है। इन्द्रियों के स्थान निश्चित हैं और विषय भी निश्चित हैं। लेकिन मन का न तो कोई निश्चित स्थान है और न कोई निश्चित विषय ही है। मन को अन्तःकरण भी कहते हैं, क्योंकि एक तो वह आँख आदि इन्द्रियों की तरह बाहर में दिखाई नहीं देता। दूसरे, मन का प्रधान काम गुण-दोष का विचार करना तथा स्मरण आदि हैं। उसमें वह इन्द्रियों की सहायता नहीं लेता।

Comments : The soul is denoted as 'Indra' and its external organs are known as 'Indriya'. It means that the soul's natural attribute is power of knowing but inspite of the manifestation of destruction-cum-subsidence of the sensory knowledge obscuring karma, it can not know without the assistance of the external means. As such these organs which assist the soul in knowing the substance are known as 'Indriya'. Or as the soul is subtle, it can not be seen and as such, the signs with which its existence is felt, are called 'Indriyas'. The activities of Indriyas prove the existence of the soul.

Here 'Anindriya' means quasi-Indriya; i.e. mind is not like Indriyas in its full sense; it is a partial Indriya. The locations of Indriyas are specifically fixed and their subjects are also fixed. But the mind does not have any specified fixed location nor a definite subject. Mind or 'Mana' is also called 'Antaḥkaraṇa' as it is not externally visible like eyes etc. Secondly, its main function is to discriminate between good or bad and to recollect etc. In these activities, it does not take assistance of senses.

मतिज्ञान के भेद

Kinds of Sensory Knowledge

अवग्रहेहावायधारणाः ।।१५।।

(अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणाः।)

Avagrahehāvāyadhāraṇāḥ. (15)

शब्दार्थ : **अवग्रहेहावायधारणाः –** अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा (ये मतिज्ञान के चार भेद हैं।)

Meaning of Words : **Avagrahehāvāyadhāraṇāḥ -** Avagraha (perception), Īhā (conception or glimpse), Avāya (judgement or inquiry) and Dhāraṇā (retention).

सूत्रार्थ : मतिज्ञान के चार भेद हैं – अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

English Rendering : Sensory knowledge is of four kinds - Avagraha (perception or glimpse), Īhā (conception), Avāya (judgement or inquiry) and Dhāraṇā (retention).

टीका : इन्द्रिय और पदार्थ का सम्बन्ध होने पर जो पदार्थ का प्रथम ग्रहण या ज्ञान होता है, वह अवग्रह है। जैसे, गहन अन्धकार में कुछ छू जाने पर यह ज्ञान होना कि ये कुछ है। इस ज्ञान में यह नहीं मालूम होता कि किस चीज का स्पर्श हुआ है, इसलिये वह अव्यक्त ज्ञान 'अवग्रह' है। अवग्रह के द्वारा ग्रहण किये हुए सामान्य विषय को विशेष रूप से निश्चित करने के लिये जो इच्छा होती है, वह 'ईहा' है। जैसे, यह रस्सी का स्पर्श है या साँप का? यही विचारणा, सम्भावना या ईहा है। ईहा के द्वारा ग्रहण किये हुए विशेष का निश्चय होना 'अवाय' है। जैसे, कुछ काल तक सोचने और जाँच करने पर निश्चय हो जाना कि यह साँप का स्पर्श नहीं, रस्सी का ही है; इसे अवाय कहते हैं। अवाय रूप निश्चय कुछ काल तक कायम रहता है। फिर मन के विषयान्तर में चले जाने पर वह निश्चय लुप्त तो हो जाता है, पर ऐसा संस्कार छोड़ जाता है कि आगे कभी योग्य निमित्त मिलने पर उसे निश्चित विषय का स्मरण हो जाता है। इस निश्चय को सततधारा तज्जन्य का संस्कार और संस्कारजन्य स्मरण – यह सब मति व्यापार 'धारणा' कहलाता है।

अवग्रह आदि क्रम से उत्पन्न होते हैं। अवग्रह पूर्वक ईहा होती है, इसलिये आदि में अवग्रह का ग्रहण किया गया है। इस प्रकार ईहा पूर्वक अवाय और अवाय पूर्वक धारणा होती है। इसलिये इन्हें इस क्रमशः ग्रहण किया है। परन्तु अवग्रह आदि चारों ही ज्ञान उत्पन्न हों ही, ऐसा नहीं है। कहीं तो केवल अवग्रह ज्ञान पाया जाता है, कहीं अवग्रह और ईहा – ये दो ज्ञान होते हैं। अवाय से धारणा उत्पन्न हो ही जाय, ऐसा कोई नियम नहीं है, धारणा हो भी सकती है और नहीं भी हो, लेकिन जब भी होगी, क्रम पूर्वक ही होगी।

Comments : The initial glimpse of an object on its contact with sense-organs is known as 'Avagraha' i.e. perception or glimpse. For example, in the state of extreme darkness, if something is touched, to have its intial impression as 'there is something'. In this perception, it is not known as to what has touched and therefore this unmanifested knowledge is 'Avagraha'. The desire to know particulars regarding the object apprehended by Avagrah is 'Īhā' i.e. conception. For example to have desire to know if the touch was of a rope or that of a snake? This thought process is known as 'Īhā'. Knowing the object as it is, after ascertaining the particulars (ascertainment with attentiveness) after due consideration and coming to a definite conclusion that the touch was of a rope and not of a snake, is called 'Avāya' i.e. judgement. Such a conclusion remains in active stage for sometime but when the mind sways in other thoughts, this subject matter is forgotten but leaves behind some such impressions that in future whenever an appropriate cause arises, one is able to remember that specific subject matter. Such remembrance or recognition arising out of regular impressions and rememberences as a result of such remembrance or recognition is called 'Dhāraṇā' of sensory functions.

Avagraha etc. manifest in a sequential way. Īhā manifests after manifestation of Avagraha. Therefore Avagraha is mentioned in the beginning. In the same way Avāya manifests after Īhā and Dhāraṇā after manifestion of Avāya. Therefore these are mentioned in that order. But it is not necessary that all the four kinds of sensory knowledge would always manifest. Sometimes only Avagraha kind is found; sometimes, Avagraha and Īhā-these two manifest. There is no such rule that Dhāraṇā had to take place after manifestation of Avāya. Dhāraṇā may or may not manifest. But whenever it manifests, it would be in that order.

मतिज्ञान के अन्य भेद

Other Divisions of Sensory Knowledge

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ।।१६।।

(बहु-बहुविध-क्षिप्र-अनिःसृत-अनुक्त-ध्रुवाणां स-इतराणाम्।)

Bahubahuvidhakṣiprāniḥsṛtānuktadhruvāṇāṁ Setarāṇām. (16)

शब्दार्थ : **बहु –** बहुत; **बहुविध –** बहुत प्रकार; **क्षिप्र –** शीघ्र; **अनिःसृत –** एक भाग के ज्ञान से सर्व का (ज्ञान होना); **अनुक्त –** अकथित (को जानना); **ध्रुवाणाम् –** ध्रुव को; **सेतराणाम् –** इनके प्रतिपक्ष भेदों को अर्थात् एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव को (जानना)।

Meaning of Words : **Bahu -** more; **Bahuvidha -** of many kinds; **Kṣipra -** quick; **Aniḥsṛta** - hidden; **Anukta -** unexpressed (to be known); **Dhruvāṇām -** lasting; **Setarāṇām -** opposite of above e.g. one, one kind, slow, revealed, expressed and transient.

सूत्रार्थ : बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव और इनके प्रतिपक्ष एक (अल्प), एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव – इन बारह के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा रूप मतिज्ञान होते हैं।

English Rendering : Each one of the kinds of sensory knowledge e.g. Avagraha, Īhā, Avāya & Dhāraṇā has twelve sub-divisions as many, many kinds, quick, partial knowledge leading to the complete knowledge, unexpressed (to be known), lasting and opposite of these i.e. one, one kind, slow, revealed, fully expressed and transient.

टीका : बहुत का अवग्रह, अल्प का अवग्रह, बहुविध का अवग्रह, एकविध का अवग्रह, क्षिप्र अवग्रह, अक्षिप्र अवग्रह, अनिःसृत का अवग्रह, निःसृत का अवग्रह, अनुक्त का अवग्रह, उक्त का अवग्रह, ध्रुव का अवग्रह और अध्रुव का अवग्रह – इस प्रकार अवग्रह, ईहा, अवाय एवं धारणा रूप मतिज्ञान के भी बारह-बारह भेद हैं। ये सब अलग-अलग पाँच इन्द्रिय और मन के द्वारा उत्पन्न होते हैं। इनमें से बहु अवग्रह आदि मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के प्रकर्ष से होते हैं, इतर ज्ञानों से नहीं। बहु आदि श्रेष्ठ हैं, अतः उनका प्रथम ग्रहण किया है।

बहु – बहुत वस्तुओं के ग्रहण करने को बहु ज्ञान कहते हैं। जैसे, बहुत शास्त्रों का सामान्य रूप से जानना अथवा सेना या वन को एक समूह रूप में जानना बहु ज्ञान है। यह संख्या और वैपुल्यवाची दोनों प्रकार का होता है।

एक – एक पदार्थ के ज्ञान को एक या अल्प ज्ञान कहते हैं। जैसे, एक ही शास्त्र का ज्ञान।

बहुविध – बहुत तरह की वस्तुओं के ग्रहण करने को बहुविध ज्ञान कहते हैं। जैसे, हाथी, घोड़े आदि या आम, महुआ आदि भेदों को जानना या बहुत शास्त्रों का ज्ञान होना।

एकविध – एक प्रकार की वस्तुओं का ज्ञान होना एकविध ज्ञान है। जैसे, चने के ढेर का होना।

क्षिप्र – शीघ्रता से जानना क्षिप्र ज्ञान है।

अक्षिप्र – धीरे-धीरे जानना अक्षिप्र ज्ञान है। जैसे, बात को धीरे-धीरे समझना।

अनिःसृत – वस्तु के एक भाग को देखकर पूरी वस्तु को जान लेना अनिःसृत ज्ञान है। जैसे, जल में डूबे हुए हाथी की सूँड को देखकर हाथी को जान लेना।

निःसृत – सामने विद्यमान पूरी वस्तु को जानना निःसृत ज्ञान है।

अनुक्त – बिना कहे हुए अभिप्राय से ही जान लेना अनुक्त ज्ञान है। जैसे, अनकही बात को समझ लेना या तार सँभालने पर ही संगीत का राग समझ लेना।

उक्त – कहने, समझाने पर जानना।

ध्रुव – बहुत काल तक निरन्तर जैसा का तैसा निश्चल ज्ञान होना।

अध्रुव – प्रतिक्षण कम या ज्यादा ज्ञान होना। जैसे, चञ्चल बिजली आदि को जानना।

इस प्रकार से बारह प्रकार का अवग्रह, बारह प्रकार की ईहा, बारह प्रकार का अवाय और बारह प्रकार का धारणा नामक मतिज्ञान होता है। ये सब मिलकर मतिज्ञान के अड़तालीस भेद होते हैं। चूँकि इनमें से प्रत्येक ज्ञान पाँचों इन्द्रियों और मन के द्वारा होता है, अतः कुल मिलाकर अवग्रह रूप मतिज्ञान के दो सौ अट्ठासी (288) भेद होते हैं।

Comments : Perception of more, perception of less, perception of many kinds, perception of one kind, perception of an object quickly, perception of an object slowly, perception of a hidden object, perception of a revealed object, preception of an expressed object, perception of an unexpressed object, perception of a lasting nature and perception of a transient nature are twelve kinds of Avagraha. Likewise are twelve

kinds each of Īhā, Avāya and Dhāraṇā also. Each of these arises separately with the help of five senses and mind. Six kinds denoted by more, many kinds and the rest arise owing to the higher degree of manifestation of destruction-cum-subsidence of karmas. But it is not so in the case of their opposites. Those denoted in the Sūtra (i.e. Bahu etc.) are mentioned first because of their worth.

Bahu - To denote many or more things at a time is known as Bahu Jñāna. For example, to have general knowledge of many scriptures or to know army or forest as a group come under Bahu Jñāna. Bahu here signifies both number and bulk.

Eka - To have knowledge of only one thing is known as Eka Jñāna or Alpa Jñāna.

Bahuvidha - To denote the knowledge of many kinds of things at a time is known as Bahuvidha Jñāna. For example, to know the kinds of elephants, horses etc. or mangos, Mahuā etc. or to study many scriptures in a variety of ways.

Ekavidha - To have knowledge of only one kind is known as Ekavidha Jñāna. For example, to study a scripture in one way.

Kṣipra - To know quickly is Kṣipra Jñāna.

Akṣipra - To know slowly is Akṣipra Jñāna; for example to understand a thing slowly.

Aniḥsṛta - To know an object by observing only a part of that is known as Aniḥsṛta Jñāna. For example by observing trunk of the submerged elephant, to know that it is the elephant.

Niḥsṛta - To know a thing totally uncovered is Niḥsṛta Jñāna.

Anukta - To know a thing by conjecture without expressing is Anukta Jñāna. For example to understand even without being expressed or to understand a melody just by observing arranging of wires of a musical instrument.

Ukta - To understand a thing after full explanation.

Dhruva - To have stable knowledge for a very long time.

Adhruva - To have increase or decrease in knowledge of transient things at every moment. For example, knowledge of the transient lightening etc.

In this manner, the sensory knowledge is of twelve kinds each i.e. perception, conception, judgement and retention. Thus there are forty-eight kinds of knowledge. As each kind of sensory knowledge manifests through five senses and mind, the total sub-kinds of sensory knowledge are two hundred & eighty-eight (288).

पदार्थ के विशेष भेद
Subdivisions of Substance

अर्थस्य ।।१७।।

Arthasya. (17)

शब्दार्थ : **अर्थस्य –** (मतिज्ञान सम्बन्धी उपर्युक्त भेद) पदार्थ के हैं।

Meaning of Words : **Arthasya -** are of substance (above twelve or 288 kinds of sensory knowledge).

सूत्रार्थ : अर्थ के (वस्तु के) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार मतिज्ञान के भेद हैं।

English Rendering : Avagraha, Īhā, Avāya & Dhāraṇā - subdivisions or kinds of sensory knowledge (described in the previous Sūtra) are of substances.

टीका : चक्षु आदि इन्द्रियों का विषय 'अर्थ' कहलाता है। बहु आदि विशेषणों से युक्त उस अर्थ के अवग्रह आदि होते हैं। द्रव्य और पर्याय को मिलाकर 'वस्तु' कहते हैं। उक्त अवग्रह, ईहा आदि ज्ञान मुख्यतः पर्याय को ही ग्रहण करते हैं, सम्पूर्ण द्रव्य को नहीं। द्रव्य को वे पर्याय द्वारा ही जानते हैं, क्योंकि इन्द्रिय और मन का मुख्य विषय पर्याय ही है। पर्याय द्रव्य का एक अंश है। इसलिये अवग्रह, ईहा आदि द्वारा जब

इन्द्रियाँ और मन अपने-अपने विषयभूत पर्याय को जानते हैं, तब वे उस-उस पर्याय रूप से द्रव्य को ही अंशतः जानते हैं; क्योंकि द्रव्य को छोड़कर पर्याय नहीं रहती और द्रव्य भी पर्याय रहित नहीं होता।

पदार्थ विशेष रूप से दो प्रकार के होते हैं – एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त। व्यक्त को अर्थ और अव्यक्त को व्यञ्जन कहते हैं। और व्यक्त पदार्थ के अवग्रह को अर्थावग्रह तथा अव्यक्त पदार्थ के अवग्रह को व्यञ्जनावग्रह कहा जाता है।

इस सूत्र में व्यक्त पदार्थ के ही अवग्रह आदिक भेद बताये हैं। अव्यक्त पदार्थ के अवग्रह आदि में कुछ विशेषता है, उसे अगले सूत्र में कहा जाएगा।

Comments : Object of the knowledge of eye etc senses is substance 'Artha'. The four kinds of sensory knowledge i.e. Avagraha, etc. relate to objects characterized by the attributes of 'Bahu' etc. The Dravya (substance) and its modes together constitute an object. The above attributes like Avagraha, Īhā etc. contact mainly the modes and not the entire Dravya. They grasp or know the Dravya only through the mode because mainly the modes of an object are grasped through senses. Mode is a part of a Dravya. Therefore when the senses and mind make contact with their respective objects by means of Avagraha, Īhā etc., they know a part of the Dravya in the form of its mode as mode has no existence without a Dravya and Dravya also does not exist without modes.

Substances are specifically characterized by two kinds - manifested and un-manifested. Manifested are called 'Artha' and unmanifested as 'Vyañjana'. The perception of manifested substances is called 'Arthāvagraha' and that of unmanifested substances as 'Vyañjanāvagraha'.

In this Sūtra, kinds of Arthāvagraha i.e. manifested substances have been described. For perception of unmanifested substances, there are certain specific features and the same are explained in the next Sūtra.

व्यञ्जनस्यावग्रहः ।।१८।।

(व्यञ्जनस्य-अवग्रहः।)

Vyañjanasyāvagrahaḥ. (18)

शब्दार्थ : **व्यञ्जनस्य** – व्यञ्जन शब्द आदि का; **अवग्रहः** – (मात्र) अवग्रह (ज्ञान होता है)।

Meaning of Words : **Vyañjanasya -** of unmanifested objects; **Avagrahaḥ -** (only) perception or glimpse.

सूत्रार्थ : अव्यक्त शब्दों आदि पदार्थों का केवल अवग्रह ज्ञान ही होता है।

English Rendering : There is only a perceptional knowledge of unmanifested objects, like words etc.

टीका : मिट्टी के कोरे घड़े आदि को पानी की दो-तीन बूँदें डालकर भिगोना प्रारम्भ किया जाय तो बूँदें पड़ने पर भी वे ऐसी सूख जाती हैं कि देखने वाला उस स्थान को भीगा हुआ नहीं कह सकता, तथापि युक्ति से वह स्थान भीगा हुआ ही है, यह बात माननी ही होगी। इसी प्रकार स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र – ये चार इन्द्रियाँ जब अपने विषयों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती हैं तभी वह व्यञ्जनावग्रह रूप ज्ञान उत्पन्न होता है। इसलिये पहले हुआ विषय का मन्द सम्बन्ध कुछ समय तक प्रगट (मालूम) नहीं होता। तथापि विषय का सम्बन्ध प्रारम्भ हो गया है, इसलिये ज्ञान होना भी प्रारम्भ हो गया है। यह बात युक्ति से अवश्य माननी पड़ती है। उस प्रारम्भ हुए ज्ञान को अव्यक्त ज्ञान अथवा व्यञ्जनावग्रह कहते हैं।

Comments : When a few (two, three) drops of water are dropped on a new earthen pot for making it wet, they quickly dry up and no one can speak about that spot as wet. But from reasoning point of view, that spot is wet and we have to accept the fact. Similarly when all the four sense organs i.e. touch, taste, smell and hearing come in contact with their respective objects, this Vyañjanāvagraha Jñāna (knowledge

of indistinct matters) manifests. It is not distinctly visible for sometime at the initial stage due to fine or subtle contact with objects but as the contact with the objects is in continuity, the knowledge of the object also starts taking place. This fact has to be accepted by deduction. This unmanifested knowledge of an object is termed as Vyañjanāvagraha.

व्यञ्जनावग्रह का स्वामी

Owner of Vyañjanāvagraha

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ।।१९।।

(न चक्षुः-अनिन्द्रियाभ्याम्।)

Na Cakṣuranindriyābhyām. (19)

शब्दार्थ : न – नहीं; **चक्षुः–अनिन्द्रियाभ्याम् –** नेत्र और मन से।

Meaning of Words : **Na -** not; **Cakṣuḥ-anindriyābhyām -** through eyes and mind.

सूत्रार्थ : चक्षु और मन से व्यञ्जनावग्रह नहीं होता।

English Rendering : Perception of indeterminate objects i.e. Vyañjanāvagraha does not take place through eyes and mind.

टीका : चक्षु और मन से व्यञ्जनावग्रह नहीं होता है, क्योंकि चक्षु और मन अप्राप्तकारी हैं। नेत्र अप्राप्त, योग्य दिशा में अवस्थित, युक्त सन्निकर्ष के, योग्य देश में अवस्थित और बाह्य प्रकाश आदि से व्यक्त हुए पदार्थ को ग्रहण करता है। इसी प्रकार मन भी अप्राप्त पदार्थ को ग्रहण करता है।

अव्यक्त रूप पदार्थों का अवग्रह केवल चार इन्द्रियों - स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र से ही होता है। सूत्र 16 की टीका में अवग्रह के बारह भेदों का उल्लेख है। अतः व्यञ्जनावग्रह के कुल 4 ह्न 12 = 48 भेद हुए। उसी सूत्र में अर्थावग्रह के 288 भेदों का उल्लेख है। इस प्रकार अवग्रह के कुल 336 भेद होते हैं।

Comments : Eyes and mind have no role to play in manifestation of Vyañjanāvagraha because eyes and mind know the objects from

a distance without being in touch or contact with them. The eyes perceive objects without physical contact or touch but they should be placed in proper position and vicinity and perspectived and revealed by external light etc. Similar is the case with mind. Mind knows the object without physically touching or contacting it.

Perception or glimpse of the indistinct type is done only by four sense organs i.e. touch, taste, smell and hearing. Under comments of Sūtra 16, description of twelve kinds of perception (Avagraha) is given. The indistinct type of perception i.e. Vyañjanāvagraha has in all 4 x 12 = 48 kinds. In that Sūtra, 288 kinds of Arthāvagraha were stated. Thus, in all there are 336 kinds of Avagraha (perception).

श्रुतज्ञान का कारण और भेद
Means & Kinds of Scriptural Knowledge

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ।।२०।।

(श्रुतं मति-पूर्वं द्वि-अनेक-द्वादश-भेदम्।)

Śrutaṁ Matipūrvaṁ Dvyanekadvādaśabhedam. (20)

शब्दार्थ : **श्रुतम् –** श्रुतज्ञान; **मतिपूर्वम् –** मतिज्ञान पूर्वक होता है; **द्व्यनेकद्वादशभेदम् –** दो, अनेक और बारह भेद वाला है।

Meaning of Words : **Śrutam -** scriptural knowledge; **Matipūrvam -** precedes by sensory knowledge; **Dvyanekadvādaśabhedam -** (is of) two, many and twelve kinds.

सूत्रार्थ : श्रुतज्ञान, मतिज्ञान पूर्वक होता है। वह दो, अनेक और बारह भेद वाला है।

English Rendering : Scriptural knowledge is preceded by sensory knowledge. It is of two, many and twelve kinds.

टीका : पहले मतिज्ञान होता है, उसके बाद श्रुतज्ञान होता है। बिना मतिज्ञान के श्रुतज्ञान नहीं होता। यह बात दूसरी है कि श्रुतज्ञान होने के बाद पुनः श्रुतज्ञान हो; लेकिन पहला श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक ही होता है। उस श्रुतज्ञान के दो भेद हैं –

अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट। अङ्गबाह्य के तो अनेक भेद हैं लेकिन अङ्गप्रविष्ट के बारह भेद हैं।

अङ्गबाह्य के अनेक भेदों में से चौदह (14) भेद इस प्रकार हैं - सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प्यव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, निषिद्धिका।

अङ्गप्रविष्ट के बारह भेद इस प्रकार हैं – आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तकृद्दश, अनुत्तरौपपादिकदश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र एवं दृष्टिवाद।

दृष्टिवाद के पाँच भेद हैं – परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। इनमें से पूर्वगत के चौदह भेद हैं – उत्पादपूर्व, अग्रायणीय, वीर्यानुप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्याननामधेय, विद्यानुप्रवाद, कल्याणनामधेय, प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार।

तीर्थङ्कर भगवान् ने केवलज्ञान के द्वारा सब पदार्थों को जानकर दिव्यध्वनि के द्वारा उपदेश दिया है। उनके साक्षात् शिष्य गणधर ने इस उपदेश को अपनी स्मृति में रखकर बारह अङ्गों में संकलित कर दिया। उसे अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञान कहा जाता है। किन्तु ये अङ्ग-ग्रन्थ महान् और गम्भीर होते हैं। अतः आचार्यों ने अल्पबुद्धि शिष्यों पर दया करके उन ग्रन्थों के आधार पर जो ग्रन्थ रचे, वे अङ्गबाह्य कहलाते हैं।

श्रुतज्ञान के दो भेद हैं – अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक। 'आत्मा' शब्द को सुनकर आत्मा के गुणों को हृदय में प्रगट करना अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद हैं - पर्यायज्ञान और पर्यायसमास। कुछ आचार्यों ने क्षयोपशम का आलम्बन लेकर इसके 20 प्रकार के भेदों का भी वर्णन किया है। सूक्ष्म निगोदिया जीव के उत्पन्न होते समय जो पहले समय में सर्व जघन्य श्रुतज्ञान होता है, वह पर्यायज्ञान है। सर्व जघन्यज्ञान पर्यायज्ञान से अधिक ज्ञान को पर्यायसमास कहते हैं। निगोदिया जीव के सम्यक् श्रुतज्ञान नहीं होता; किन्तु मिथ्या श्रुतज्ञान होता है। स्पर्श आदि के द्वारा किसी वस्तु का ज्ञान होना मतिज्ञान है। उसके सम्बन्ध से ऐसा ज्ञान होना कि यह हितकारी है या नहीं, वह श्रुतज्ञान है। वह अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। एकेन्द्रिय आदि असञ्ज्ञी जीवों के अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही होता है। सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के दोनों प्रकार का श्रुतज्ञान होता है।

श्रुत का अर्थ होता है विषय का ज्ञान। श्रुतज्ञान मतिज्ञान के बाद होता है तथा उसमें वर्णनीय तथा शिक्षा योग्य सभी विषय आते हैं और यह सुनकर जाना जा सकता है। इस प्रकार श्रुतज्ञान में श्रुत का सम्बन्ध मुख्यता से है। इसीलिये श्रुतज्ञान को शास्त्र ज्ञान भी कहा जाता है।

Comments : Sensory knowledge manifests first and only thereafter only scriptural knowledge manifests. Without manifestation of sensory knowledge, scriptural knowledge does not manifest. It is a different matter that scriptural knowledge may recur after manifestation of scriptural knowledge. But the first scriptural knowledge occurs only after manifestation of sensory knowledge. That scriptural knowledge is of two kinds - Aṅgabāhya (works outside the original canons) and Aṅgapraviṣṭa (works within the original canons). Aṅgabāhya is of many kinds but Aṅgapraviṣṭa is of twelve kinds.

Out of many kinds of Aṅgabāhya, fourteen kinds are as follows - Sāmāyika, Caturviṁśatistava, Vandanā, Pratikramaṇa, Vainayika, Kṛtikarma, Daśavaikālika, Uttarādhyayana, Kalpyavyavahāra, Kalpyākalpya, Mahākalpya, Puṇḍarīka, Mahāpuṇḍarīka and Niṣiddhikā.

The twelve kinds of Aṅgapraviṣṭa are as under - Ācāra, Sūtrakṛta, Sthāna, Samavāya, Vyākhyāprajñapti, Jñātṛdharmakathā, Upāsakādhyayana, Antakṛddaśa, Anuttaraupapādikadaśa, Praśnavyākaraṇa, Vipākasūtra and Dṛṣṭivāda.

Dṛṣṭivāda is of five kinds - Parikarma, Sūtra, Prathamānuyoga, Pūrvagata and Cūlikā. Out of these Pūrvagata is again of fourteen kinds - Utpādapūrva, Agrāyaṇīya, Vīryānupravāda, Astināstipravāda, Jñānapravāda, Satyapravāda, Ātmapravāda, Karmapravāda, Pratyākhyānanāmadheya, Vidyānupravāda, Kalyāṇanāmadheya, Prāṇāvāya, Kriyāviśāla and Lokabindusāra.

After attaining omniscience and knowing all the substances, the Tīrthaṅkara omniscient preached through his divine speech (Divyadhvani). His immediate disciple Gaṇadhara composed twelve Aṅgas recollecting the import of such preachings. This is known as Aṅgapraviṣṭa scriptural knowledge. As these canons are very sacred and solemn, the Ācāryas, out of their compassion, composed scriptures for the benefit of their disciples who are less knowledgable.

Scriptural knowledge is of two kinds - word-form and non-word-form. On listening the word 'Ātmā', to have manifestation of the virtues of soul within one-self is the word-form scriptural knowledge.

Non-word-form scriptural knowledge is of two kinds - Paryāya Jñāna (the least knowledge possessed by the micro organism) and Paryāya Samāsa (more knowledge than the minimum knowledge possessed by micro-organism). Some Ācāryas have classified these into twenty kinds based on destruction-cum-subsidence (Kṣāyopaśama) of karmas. The minimum scriptural knowledge manifested in the first Samaya of the birth of a micro-organism is known as Paryāya Jñāna. Knowledge more than the minimum scriptural knowledge is called Paryāya Samāsa. A micro-organism does not attain the Right Knowledge but gets wrong scriptural knowledge. Knowledge manifested by touch etc. sense organ is sensory knowledge and by contact of that to have knowledge whether it is beneficial or not is scriptural knowledge. i.e. non-word-form of scriptural knowledge. Living beings without mental faculty having one sense organ etc. do get only non-word-form scriptural knowledge but those with mental faculty having all five sense organs do get both types of scriptural knowledge.

'Śruta' means knowledge acquired by listening to a subject or a word. Although scriptural knowledge is preceded by the sensory knowledge, but it encompasses all the subjects for description and education and can be acquired by hearing. As such in the scriptural knowledge, the content of 'Śruta' is a major factor. Therefore scriptural knowledge is also called 'Śāstra Jñāna'.

भवप्रत्यय अवधिज्ञान
Birth-based Knowledge such as Clairvoyance

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ।।२१।।

(भव-प्रत्ययः-अवधिः-देव-नारकाणाम्।)

Bhavapratyayo(a)vadhirdevanārakāṇām. (21)

शब्दार्थ : **भवप्रत्ययः –** भवप्रत्यय; **अवधिः –** अवधि (ज्ञान); **देवनारकाणाम् –** देव और नारकियों के (होता है।)

Meaning of Words : **Bhavapratyayaḥ -** Bhavapratyaya i.e. as a result of the birth; **Avadhiḥ -** clairvoyance; **Devanārakāṇām -** manifests in celestial beings and hellish beings.

सूत्रार्थ : भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों में पाया जाता है।

English Rendering : Bhavapratyaya (resultant of birth) knowledge such as clairvoyance manifests in celestial beings and hellish beings by virtue of their birth.

टीका : जो द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि की सीमा में रहकर मात्र रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष जानता है, वह अवधिज्ञान है। इसके दो भेद हैं – भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय।

भवप्रत्यय – आयु कर्म के उदय का निमित्त पाकर जो जीव की पर्याय होती है, वह 'भव' कहलाती है और जिस अवधिज्ञान के होने में भव निमित्त हो, वह भव-प्रत्यय अवधिज्ञान कहलाता है। देव और नरक भव (पर्याय) में यह ज्ञान सभी देव और नारकियों में न्यूनाधिक पाया जाता है।

गुणप्रत्यय – जो किसी पर्याय विशेष की अपेक्षा न रखकर अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से हो, उसे गुणप्रत्यय अथवा क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं। यह अन्तरङ्ग कारण है। यह ज्ञान सम्यग्दर्शन सहित संयमासंयम या संयम धारण करने वाले किन्हीं-किन्हीं जीवों को होता है, सभी को नहीं।

भवप्रत्यय अवधिज्ञान में भी अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम रहता है, लेकिन वह क्षयोपशम देव और नरक पर्याय में नियम से प्रकट होता है। इतना अवश्य है कि भवप्रत्यय अवधिज्ञान सब देव और नारकियों का अलग-अलग होता है।

तीर्थङ्करों को भी भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। यद्यपि तीर्थङ्कर कोई भव नहीं है तथापि तीर्थङ्कर का जीव नरक या स्वर्ग से आकर ही उत्पन्न होता है। नरक या स्वर्ग में उस जीव को भवप्रत्यय अवधिज्ञान रहता है और वह जीव उस भवप्रत्यय अवधिज्ञान को अपने साथ लेकर आता है। वे जन्म लेते समय सम्यग्दर्शन और अवधिज्ञान युक्त होते हैं, यहाँ आकर अवधिज्ञान प्राप्त नहीं करते।

सम्यग्दृष्टि देवों का अवधिज्ञान सम्यक् होता है जबकि मिथ्यादृष्टि देवों को कुअवधिज्ञान या विभङ्गज्ञान होता है।

गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान मनुष्य व तिर्यञ्चों के ही होता है; उनमें भी सभी को नहीं। यह केवल सञ्ज्ञी, पर्याप्तक, सम्यग्दृष्टि, पञ्चेन्द्रिय सामर्थ्यवान् जीव को ही होता है।

Comments : The knowledge which manifests conditioned by limitations of Dravya (substance), Kṣetra (space), time etc. and knows directly only the physical form of objects is known as Avadhi Jñāna or knowledge such as clairvoyance. It is of two kinds - Bhavapratyaya (owing to life-course) and Guṇapratyaya (due to manifestion of corresponding virtues).

Bhavapratyaya - The life-course of a soul gained due to rise of age determining karma is known as 'Bhava' and the kind of Avadhi Jñāna in which life-course is the instrumental cause is known as Bhavapratyaya Avadhijñāna. This type of Avadijñāna is found amongst all celestial beings and hellish beings in the varying degree.

Guṇapratyaya - That kind of Avadhi Jñāna which manifests without any consideration of life-course of a Jīva and manifests as a result of rise of destruction-cum-subsidence of karmas (Kṣayopaśama Nimittaka). It is an internal cause. It manifests to the Jīva having Great Vows or partial vows but does not necessarily manifest to all of them.

In the Bhavapratyaya kind of Avadhi Jñāna, the cause is the rise of destruction-cum-susbidences of karmas but that rise takes place as a rule in the life-courses of celestials and hellish beings. It is of course a fact that it manifests to all celestial beings and hellish beings in varying degrees.

Tīrthaṅkaras also possess Bhavapratyaya Avadhi Jñāna although Tīrthaṅkara is not a life course. But the soul to take birth as a Tīrthaṅkara comes either from heaven or hell. In that life-course the soul of Tīrthaṅkara does have the knowledge such as clairyoance of Bhavapratyaya type and while transmigrating, the soul of the Tīrthaṅkara continues to be bestowed with that kind of knowledge such as clairvoyance. As such the knowledge such as clairvoyance of the Tīrthaṅkaras is not Bhavapratyaya kind but they are born bestowed with Right Faith as well as knowledge such as clairvoyance and do not attain the knowledge such as clairvoyance afresh in the present life-course.

The Right Believer celestial beings attain right kind of clairvoyance, where as the Wrong Believers - celestial beings attain erroneous kind of knowledge such as clairvoyance termed as Kuavadhi or Vibhaṅga Jñāna.

The Guṇapratyaya or Kṣayopaśama Nimittaka clairvoyance is earned only by human beings and Tiryañcas but not all of them attain it. It manifests only to a few of those five sensed capable souls who possess mental power, have completed all their vitalities and are Right Believers.

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान

Volitional Purity-cause of Knowledge such as Clairvoyance

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ।।२२।।

(क्षयोपशम-निमित्तः षट्-विकल्पः शेषाणाम्।)

Kṣayopaśamanimittaḥ ṣaḍvikalpaḥ Śeṣāṇām. (22)

शब्दार्थ : **क्षयोपशमनिमित्तः–** क्षयोपशम निमित्तक (अवधिज्ञान); **षड्विकल्पः–** छह भेद (अनुगामी, अननुगामी, वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित); **शेषाणाम् –**शेषों को (अर्थात् मनुष्य और तिर्यञ्चों को होता है)।

Meaning of Words : **Kṣayopaśamanimittaḥ -** arises from the destruction cum susbsidence of karmas which obscure clairvoyance; **ṣaḍvikalpaḥ -** of six kinds (accompanying clairvoyance, non-accompanying clairvoyance, increasing clairvoyance, decreasing clairvoyance, steadfast clairvoyance and changable clairvoyance); **Śeṣāṇām -** of the remaining beings (i.e. human beings and Tiryañcas).

सूत्रार्थ : क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान (या गुणप्रत्यय अवधिज्ञान) छह प्रकार का है और वह शेषों अर्थात् मनुष्य और तिर्यञ्चों को होता है।

English Rendering : Kṣayopaśama Nimittaka Avadhi Jñāna (or Guṇapratyaya Avadhi Jñāna) is of six kinds and is acquired by human beings and Tiryañcas.

टीका : अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम जिसमें निमित्त है, उसे क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं। यद्यपि सभी अवधिज्ञान क्षयोपशम के निमित्त से ही होते हैं, फिर भी इस प्रकार के अवधिज्ञान का नाम क्षयोपशम निमित्तक इसलिये रखा गया है, क्योंकि इसके होने में क्षयोपशम ही प्रधान कारण है, भव नहीं। इसी से इसे गुणप्रत्यय भी कहते हैं। इसके छह भेद हैं ह्न

1. अनुगामी – जो अवधिज्ञान जीव के साथ-साथ पर-क्षेत्र में भी जाता है, उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं - क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी और उभयानुगामी (क्षेत्रभवानुगामी)। जिस जीव के जिस क्षेत्र में अवधिज्ञान प्रकट हुआ, वह जीव यदि दूसरे क्षेत्र में जाए तो वह अवधिज्ञान भी उसके साथ जाए और छूटे नहीं, उसे क्षेत्रानुगामी कहते हैं। जो अवधिज्ञान परलोक में भी अपने स्वामी जीव के साथ जाता है, वह भवानुगामी है। जो अवधिज्ञान परलोक में भी अपने स्वामी जीव के साथ जाता है और अन्य क्षेत्र में भी साथ जाता है, वह उभयानुगामी है।

2. अननुगामी – जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीव के साथ नहीं जाता, वह अननुगामी है। उसके भी तीन भेद हैं - क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी और क्षेत्रभवाननुगामी। जो क्षेत्रान्तर में साथ नहीं जाता, भवान्तर में ही साथ जाता है, वह क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान है। जो भवान्तर में साथ नहीं जाता, क्षेत्रान्तर में ही साथ जाता है वह भवाननुगामी अवधिज्ञान है। जो क्षेत्रान्तर और भवान्तर दोनों में साथ नहीं जाता और एक ही क्षेत्र और भव के साथ सम्बन्ध रखता है, वह क्षेत्रभवाननुगामी अवधिज्ञान है।

3. वर्धमान – विशुद्ध परिणामों की वृद्धि से जो अवधिज्ञान बढ़ता ही जाता है, उसे वर्धमान कहते हैं।

4. हीयमान (हायमान) – संक्लेश परिणामों की वृद्धि होने से जो अवधिज्ञान घटता ही जाता है, उसे हीयमान (हायमान) कहते हैं।

5. अवस्थित – जो अवधिज्ञान जिस मर्यादा को लेकर उत्पन्न हुआ हो उसी मर्यादा में रहे; न घटे और न बढ़े, उसे अवस्थित कहते हैं।

6. अनवस्थित – जो अवधिज्ञान घटता-बढ़ता हो, उसे अनवस्थित कहते हैं।

कुछ आचार्यों ने अवधिज्ञान के और भी प्रकार से भेद बताये हैं; जैसे, देशावधि, परमावधि और सर्वावधि।

इसमें देशावधि तो चारों गतियों के जीव को हो सकता है, किन्तु परमावधि और सर्वावधि ज्ञान चरमशरीरी मुनियों के ही होता है। देशावधि और परमावधि के जघन्य, उत्कृष्ट और जघन्योत्कृष्ट भेद भी हैं। सर्वावधि तो एक ही प्रकार का होता है। तीर्थङ्कर भगवान् को गृहस्थ अवस्था में देशावधि ज्ञान ही होता है।

आचार्यों ने अवधिज्ञान के १३ भेद भी बताये हैं - देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, सप्रतिपाती, अप्रतिपाती, एकक्षेत्रावधि और अनेकक्षेत्रावधि।

जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर निर्मूल विनाश को प्राप्त होता है, उसे स-प्रतिपाती अवधिज्ञान कहते हैं। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर ही विनष्ट होता है; अन्यथा विनष्ट नहीं होता, उसे अप्रतिपाती अवधिज्ञान कहते हैं।

जिस अवधिज्ञान का कारण जीव शरीर का एक देश होता है वह एकक्षेत्र अवधिज्ञान है। जो अवधिज्ञान प्रति नियत क्षेत्र के बिना शरीर के सब अवयवों से होता है वह अनेक-क्षेत्र अवधिज्ञान है।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान सम्यग्दर्शन, देशव्रत अथवा महाव्रत के निमित्त से होता है। तथा वह सम्यग्दृष्टि, देशव्रती या महाव्रती सभी जीवों को नहीं होता, कुछ को होता है, क्योंकि असंख्यात लोकप्रमाण सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम रूप परिणामों में अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम के कारणभूत परिणाम बहुत थोड़े होते हैं। तीनों प्रकार के अवधिज्ञान (देशावधि, परमावधि और सर्वावधि) गुणप्रत्यय हैं किन्तु भवप्रत्यय नियमतः देशावधि ही होता है।

Comments : The kind of Knowledge such as clairvoyance in which the instrumental cause is the destruction-cum-subsidence of clairvoyance obscuring karma is called Kṣayopaśama Nimittaka Avadhijñāna (clairvoyance caused as a result of rise of destruction-cum-subsidence). Although all kinds of manifestation of Knowledge such as clairvoyance is due to rise of destruction-cum-subsidence of karmas, it is called so as the main cause of its manifestation is destruction-cum-subsidence and not the life-course. That is why it is also called Guṇapratyaya. It is of six kinds -

1. Anugāmī (Accompanying) - Knowledge such as clairvoyance which accompanies the possessor in his occupied area or any

other areas where ever he goes. It is also of three types - Kṣetrānugāmī i.e. accompanies in all areas wherever the possessor may go; Bhavānugāmī i.e. accompanies in the life-course where-ever the possessor may go and Ubhayānugāmī i.e. Kṣetrabhavānugāmī - it accompanies the possessor in any area and life-course where-ever the possessor may go or take birth in the next life. That kind of knowledge such as clairvoyance which follows the possessor in the areas other than the place of origin and does not leave him is called Kṣetrānugāmī. The knowledge such as clairvoyance which accompanies the possessor in the next birth is called Bhavānugāmī. The knowledge such as clairvoyance which accompanies the possessor in the other areas and also in the other births is called Ubhayānugāmī.

2. Ananugāmī (Unaccompanying) - The knowledge such as clairvoyance which does not accompany the possessor is known as Ananugāmī. It is also of three kinds - Kṣetrānanugāmī, Bhavānanugāmī and Kṣetrabhavānanugāmī. That which does not accompany the possessor from one area to another but accompanies him only from the present life-course to the next one is known as Kṣetrānanugāmī Avadhijñāna. That which does not accompany the possessor from the present life-course to the next but accompanies the possessor from one area to another is known as Bhavānanugāmī. That which neither accompanies the possessor from one life-course to another nor from one area to another but only remains manifested in one area and one life-course is known as Kṣetrabhavānanugāmī Avadhijñāna.

3. Vardhamāna (Increasing) - That which continues to increase as a result of increasing pious feelings is known as Vardhamāna Avadhijñāna.

4. Hīyamāna (Hāyamāna) (Decreasing) - That which goes on decreasing as a result of increasing non-pious or painful thoughts is known as Hīyamāna or Hāyamāna Avadhijñāna.

5. Avasthita (Steady) - That which remains steady without any increase or decrease in the limits within which it is manifested is known as Avasthita Avadhijñāna.

6. Anavasthita (Unsteady) - That which continues to increase or decrease is called Anavasthita Avadhijñāna.

Some Ācāryas have classified clairvoyance in different ways also i.e. Deśāvadhi (Partial Avadhi Jñāna), Paramāvadhi (supreme Avadhi Jñāna) and Sarvāvadhi (complete Avadhi Jñāna).

Out of these, partial clairvoyance can be attained by the beings in all four life-courses; but supreme clairvoyance and complete clairvoyance manifest only to those monks who are to attain salvation in that very life course. Partial clairvoyance and supreme clairvoyance are classified as minimum, excellent and minimum-cum-excellent (knowledge). Complete clairvoyance is of only one type. Tīrthaṅkara Jīva as an house-holder possess only the partial Avadhi Jñāna.

Ācāryas have also classified clairvoyance in to thirteen kinds as Deśāvadhi, Paramāvadhi, Sarvāvadhi, Hīyamāna, Vardhamāna, Avasthita, Anavasthita, Anugāmī, Ananugāmī, Sapratipātī, Apratipātī, Ekakṣetrāvadhi and Anekakṣetrāvadhi.

That Avadhi Jñāna which comes to an end after its manifestation is known as Sa-pratipātī. Avadhi Jñāna which meets its end at the attainment of omniscience and not otherwise is known as Apratipātī. Avadhi Jñāna which manifests from one part of the body (of the possessor) is known as Ekakṣetra Avadhijñāna. The Avadhi Jñāna which manifests from all parts of the body of the possessor without limitation of one particular part is known as Anekakṣetra Avadhijñāna.

Guṇapratyaya Avadhijñāna manifests as a result of attainment of Right Faith, Great Vows or Partial Vows. It manifests to some Right Believers, Great Vows-holders and Partial Vows-holders because volitional purity leading to destruction-cum-subsidence of Avadhi Jñāna obscuring karmas are far less amongst the innumerable kinds of manifestations of Right Faith, Partial Vows and Great Vows, in this universe. All the three kinds i.e. Deśāvadhi, Paramāvadhi and Sarvāvadhi Avadhi Jñāna are Guṇapratyaya but Bhavapratyaya, as a rule, is only Deśāvadhi.

मनःपर्ययज्ञान के भेद
Kinds of Mind Reading Knowledge

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ।।२३।।

(ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः।

Ṛjuvipulamatī Manaḥparyayaḥ. (23)

शब्दार्थ : **ऋजुविपुलमती –** ऋजुमति और विपुलमति; **मनःपर्ययः –** मनःपर्यय (ज्ञान) है।

Meaning of Words : **Ṛjuvipulamatī -** Ṛjumati (simple mind reading knowledge) and Vipulamati (complete mind reading knowledge); **Manaḥparyayaḥ -** mind reading knowledge.

सूत्रार्थ : मनःपर्ययज्ञान ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है।

English Rendering : Mind reading knowledge is of two kinds - Ṛjumati i.e. simple mind reading knowledge and Vipulamati i.e. complete mind reading knowledge of all types i.e. complex as well as simple.

टीका : सूत्र नौ की टीका में मनःपर्ययज्ञान की परिभाषा दी गई है। इस सूत्र में मनःपर्ययज्ञान के दो भेदों का कथन किया जा रहा है। ऋजुमतिमनःपर्यय दूसरे के मन में सरल रूप में स्थित रूपी पदार्थ को प्रत्यक्ष जानता है; जबकि विपुलमतिमनःपर्यय सरल और जटिल दोनों रूप में स्थित पदार्थों को प्रत्यक्ष जानता है। यह ज्ञान किसी के मन में स्थित रूपी पदार्थ और संसारी जीव के विषय में जानता है। अमूर्तिक द्रव्यों और मुक्त आत्माओं के विषय में जो चिन्तन किया गया हो, उसे मनःपर्ययज्ञान नहीं जान सकता। यह उन्हीं जीवों के मन की बात जान सकता है जो मनुष्यलोक की सीमा के अन्दर हों। इतना विशेष है कि मनुष्यलोक तो गोलाकार है किन्तु किन्हीं आचार्यों के मत से मनःपर्ययज्ञान का क्षेत्र मानुषोत्तर पर्वत के भीतर की बात ही जानता है, उसके बाहर की बात नहीं जानता। अन्य आचार्यों के मत से इसका क्षेत्र गोलाकार न होकर 45 लाख योजन लम्बा-चौड़ा चौकोर है। उसके दो भेदों में से ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान तो केवल उसी वस्तु को जान सकता है जिसके बारे में स्पष्टतः विचार किया गया हो अथवा मन, वचन, काय की चेष्टा से जिसे स्पष्टतः कर दिया गया हो। किन्तु विपुलमति मनःपर्ययज्ञान चिन्तित, अचिन्तित और अर्धचिन्तित को भी जान लेता है।

मनःपर्ययज्ञान विकसित अष्ट पाँखुड़ी युक्त कमल के आकार वाले द्रव्य मन के प्रदेशों में उत्पन्न होता है। जिस प्रकार भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्वाङ्ग से और गुणप्रत्यय करणचिह्नों से उत्पन्न होता है, उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान द्रव्य मन से उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार अवधिज्ञान चारों गतियों के जीवों को उत्पन्न हो सकता है वैसे मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती। इसके स्वामी छठवें से बारहवें गुणस्थान वाले मुनि ही होते हैं और उसमें भी यह ऋद्धि प्राप्त मुनियों में भी किसी-किसी को ही होता है, सबको नहीं। इसकी उत्पत्ति तो अप्रमत्तसंयत दशा में ही होती है, भले ही बाद में वह प्रयोग के समय प्रमत्तसंयत अवस्था में आ जाता है।

यहाँ यह भी उल्लेख इष्ट है कि मनःपर्ययज्ञान के क्षेत्र के सम्बन्ध में कुछ आचार्यों का मत ऐसा भी है कि मानुषोत्तर पर्वत के समीप में स्थित होकर उसकी बाह्य दिशा में उपयोग करने वाले के ज्ञान की उत्पत्ति न हो सकने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि क्षयोपशम का अभाव नहीं है और न ही मनःपर्ययज्ञान रूप अनिन्द्रियप्रत्यक्ष ज्ञान का मानुषोत्तर पर्वत से प्रतिघात होना सम्भव है। इसके क्षेत्र का कथन केवल 45 लाख योजन विस्तार का नियामक है।

Comments : Manaḥparyayajñāna (mind reading knowledge) has been defined under the comments of Sūtra nine. In this Sūtra, two kinds of mind reading knowledge is described. Ṛjumati Manaḥparyayajñāna enables the possessor to know directly the simple and straight thoughts about the objects with forms present in others' mind; whereas by Vipulamati Manaḥparyayajñāna, the possessor knows directly both simple as well as intricate objects present in others' mind. By this knowledge one can read the thought present in others' mind relating to the object with forms as well as about mundane beings. This mind reading knowledge can not comprehend formless substances and also about the liberated beings. This mind reading knowledge is able to read others' mind located in human-world. It is specially to be noted that human-world i.e. Loka is a circular one but according to some Ācāryas the subject matter of mind-reading knowledge is limited to the Mānuṣottara Parvata and not beyond or outside that. Some other Ācāryas are of the opinion that area of such a reading of human mind is not the circular but has a rectangular shape having a length and breadth each of 45 Lākha Yojanas. Out of its two kinds, Ṛjumati mind reading knowledge can know only such thoughts which are straight and simple

or are clearly characterized by the activities of mind, speech and body. But Vipulamati mind reading knowledge can know even such thoughts which are fully reflected, not reflected or partially reflected.

Mind reading knowledge originates from the space-points of the heart of the possessor which is of the shape of a eight petals blossomed lotus. As the Bhavapratyaya Avadhijñāna originates from the entire body of the possessor and Guṇapratyaya Avadhijñāna from the auspicious marks like lotus etc. in the body of the possessor, so does mind reading knowledge originates from the physical form of heart.

This mind reading knowledge does not manifest to all living beings in the four life-courses as is the case with the manifestation of Avadhijñāna. It manifests only to those monks who dwell in sixth to twelvth stage of spiritual development and amongst them also, it manifest to some erudite monks in vigilant restraint stage of spiritual development (Apramatta Saṁyata stage) but may be, the possessor reaches the Pramatta Saṁyata stage while applying it.

It may be mentioned here that some of the Ācāryas have difference of opinion about the area in which mind reading knowledge operates. They hold that if the possessor of this knowledge is in the vicinity of Mānuṣottara Parvata, there is no reason why this knowledge could not be applied for reading others' mind who may be located beyond that Parvata because there is no lack of destruction-cum-subsidence of karmas nor is it possible that this direct non-sensuous perceptible knowledge would get obstructed by Mānuṣottara Parvata. The area for its applicability is defined only as 45 lākha Yojanas without any other restriction.

मनःपर्ययज्ञान के भेदों में विशेषता

Speciality between kinds of Mind Reading Knowledge

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ।।२४।।

(विशुद्धि-अप्रतिपाताभ्यां तत्-विशेषः।)

Viśuddhyapratipātābhyāṁ Tadviśeṣaḥ. (24)

शब्दार्थ : **विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् –** (आत्मा की) विशुद्धि और अप्रतिपात; **तद्विशेषः –** इन दोनों में है। अर्थात् ऋजुमति और विपुलमति ज्ञानों में (विशेषता है)।

Meaning of Words : **Viśuddhyapratipātābhyām -** purity of thoughts and infallibility; **Tadviśeṣaḥ -** speciality between the two mind reading knowledges (i.e. Ṛjumati and Vipulamati).

सूत्रार्थ : परिणामों की विशुद्धि और अप्रतिपात अर्थात् केवलज्ञान होने से पूर्व नहीं छूटना – इन दो बातों से ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में विशेषता है।

English Rendering : The difference between the two kinds - Ṛjumati and Vipulamati mind-reading knowledge is the purity of thoughts (of soul) and infallibility i.e. it remains till attainment of omniscience.

टीका : मनःपर्ययज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर आत्मा में जो निर्मलता आती है, उसे विशुद्धि कहते हैं।

चारित्रमोहनीय कर्म के उदय हो जाने के कारण संयम के शिखर से च्युत हुए उपशान्तकषाय जीव का मनःपर्ययज्ञान प्रतिपाती होता है। परन्तु क्षीणकषाय बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव के प्रतिपाती कारणों का अभाव होने के कारण वह मनःपर्ययज्ञान अप्रतिपाती है। विशुद्धि की अपेक्षा ऋजुमति से विपुलमति मनःपर्ययज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा विशुद्धतर है, क्योंकि ऋजुमति के विषय के अनन्तभाग करने पर जो अन्तिम भाग प्राप्त होता है, वह विपुलमति का विषय है। अनन्त के अनन्त भेद होते हैं, अतः ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषय बन जाते हैं। अप्रतिपाती की अपेक्षा भी विपुलमति विशिष्ट है, क्योंकि इसके स्वामियों के प्रवर्धमान चारित्र पाया जाता है। परन्तु ऋजुमति प्रतिपाती हो सकता है, क्योंकि इनके स्वामियों के कषाय के उदय से घटता हुआ चारित्र पाया जाता है। तात्पर्य यह है कि विपुलमति मनःपर्ययज्ञान उसी को होता है जो तद्भव मोक्षगामी होते हुए भी क्षपक श्रेणी पर चढ़ता है, किन्तु ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान के लिये ऐसा कोई नियम नहीं है। ऋजुमति तद्भव मोक्षगामी को भी हो सकता है और अन्य को भी हो सकता है। इसी प्रकार जो क्षपक श्रेणी या उपशम श्रेणी चढ़े – दोनों को भी हो सकता है या जो श्रेणी न भी चढ़े, उसे भी हो सकता है। इस कारण भी ऋजुमति प्रतिपाती और विपुलमति अप्रतिपाती माना गया है।

Comments : The purity of thoughts generated as a result of rise of destruction-cum-subsidence of mind-reading knowledge obscuring karmas is known as 'Viśuddhi' i.e. pure passion-less feelings.

Owing to rise of conduct deluding karma, the possessor of mind-reading knowledge dwelling in Upaśāntakaṣāya stage of spiritual development because of his fall from the extreme position of restraint conduct, his knowledge is called counterfalling (i.e. Pratipātī). But the one who dwells in the twelfth stage of spiritual development i.e. Kṣīṇakaṣāya, there is no reason for counter falling. Hence his knowledge is undestroyable (Apratipātī). In terms of purity of thoughts, Vipulamati is superior to Ṛjumati in the context of Dravya, Kṣetra, Kāla and Bhāva, because last part out of infinite divisions made of the object comprehended by Ṛjumati can be known by Vipulamati. Infinite has infinite parts and as such higher & higher parts of knowledge become finer and finer. In the context of undestroyability of the knowledge, Vipulamati is superior as the possessor of the knowledge possesses ever increasing conduct but Ṛjumati is counter falling one because its possessors are found to have decreasing knowledge due to rise of passions. In nut-shell, Vipulamati mind-reading knowledge manifests only to those who are destined to attain liberation in that very birth and ascend the ladder of spiritual development by destroying their karmas, but there is no such rule for manifestation of Ṛjumati mind-reading knowledge. Ṛjumati can also manifest to those who are to attain salvation in that very birth and also to others. Similarly it can manifest to those who ascend subsidence ladder of spiritual development or to those also who may not ascend the spiritual ladder at all. Because of these reasons, Ṛjumati is considered as counter-falling and Vipulamati as undestructive or infallable mind-reading knowledge.

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में विशेषता

Comparision between knowledge such as Clairvoyance & Mind Reading Knowledge

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्याययोः ।।२५।।

(विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्यः अवधि-मनःपर्याययोः।)

Viśuddhikṣetrasvāmiviṣayebhyo(a)vadhimanaḥparyayayoḥ. (25)

शब्दार्थ : **विशुद्धि –** परिणामों की निर्मलता; **क्षेत्र –** जानने योग्य पदार्थों का आधार; **स्वामी –** जानने वाला; **विषयेभ्यः –** जानने योग्य पदार्थ; **अवधिमनःपर्यययोः –** अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में (विशेषता है)।

Meaning of Words : **Viśuddhi -** volitional purity; **Kṣetra -** area up to which knowledge works; **Svāmī -** possessor; **Viṣayebhyaḥ -** object to be known; **Avadhimanaḥparyayayoḥ -** (difference) between knowledge such as clairvoyance and mind-reading knowledge.

सूत्रार्थ : विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान में भेद या विशेषता है।

English Rendering : Avadhijñāna and Manaḥparyayajñāna differ in respect of volitional purity, area within which knowledge is manifested, the possessor and the object of their knowledge.

टीका : इस सूत्र में मनःपर्ययज्ञान और अवधिज्ञान में विशेषताओं (अन्तर) का कथन किया गया है। विशुद्धि का अर्थ निर्मलता है। विशुद्धि की अपेक्षा मनःपर्ययज्ञान वर्द्धमान चारित्रधारी ऋद्धिधारी मुनियों में भी किसी-किसी मुनि को ही होता है, जबकि अवधिज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है। उत्कृष्ट अवधिज्ञान का क्षेत्र असंख्यात लोकप्रमाण तक है, जबकि मनःपर्ययज्ञान का क्षेत्र ढाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र) या 45 लाख योजन प्रमाण है। स्वामी की अपेक्षा मनःपर्ययज्ञान केवल ऋद्धिधारी संयमी मुनियों में किसी-किसी को ही होता है, जबकि अवधिज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है। विषय की अपेक्षा अवधिज्ञान जिस रूपी द्रव्य को जानता है, उसके अनन्तवें भाग सूक्ष्म रूपी द्रव्य को मनःपर्ययज्ञान जानता है। यद्यपि मनःपर्ययज्ञान के क्षेत्र का प्रमाण अवधिज्ञान की अपेक्षा थोड़ा है, फिर भी मनःपर्ययज्ञान ही उत्कृष्ट माना जाता है, क्योंकि उसका विषय सूक्ष्म-सूक्ष्मतर होने से प्रकृष्ट तथा स्वामी भी संयत होने से विशिष्ट हुआ करता है।

Comments : In this Sūtra, comparision between mind-reading knowledge and knowledge such as clairvoyance has been made. 'Viśuddhi' means purity of thoughts. As regards purity of thoughts, the mind-reading knowledge manifests only to some increasing-purity-conduct erudite ascetics who are bestowed with some extraordinary powers and not to everyone; where as clairvoyance can be attained by all

Jīvas of all the four life-courses. The maximum area of manifestation of Avadhijñāna is the entire universe whereas the area of manifestation of mind-reading knowledge is limited to human-world or 45 Lākha Yojanas. In the context of the possessors, the mind-reading knowledge can be attained only by a few erudite monks whereas Avadhijñāna is attainable by Jīvas of all the four life-courses. As regards, object-wise knowledge, the mind-reading knowledge has the capacity to know the infinitesimal part of object with form known by Avadhijñāna. Although the area of applicability of mind-reading knowledge is smaller as compared to that of Avadhijñāna, mind-reading knowledge is considered superior because it encompasses subtler and wider variety of objects and its possessor is able erudite ascetic due to his purity of volitions.

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय
Scope of Sensory Knowledge & Scriptural Knowledge

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ।।२६।।

(मति-श्रुतयोः निबन्धः द्रव्येषु असर्वपर्यायेषु।)

Matiśrutayornibandho Dravyeṣvasarvaparyāyeṣu. (26)

शब्दार्थ : **मति–श्रुतयोः –** मति और श्रुत (ज्ञान) का; **निबन्धः –** नियम या सम्बन्ध; **द्रव्येषु असर्वपर्यायेषु –** द्रव्यों में (उनकी) कुछ पर्यायों में (होता है)।

Meaning of Words : **Matiśrutayoḥ -** of sensory knowledge & scriptural knowledge; **Nibandhaḥ -** relation to; **Dravyeṣu Asarvaparyayeṣu -** in all substances but only in their some modes.

सूत्रार्थ : मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सभी द्रव्यों में होती है।

English Rendering : The field or scope of sensory knowledge and scriptural knowledge expands to all substances but is limited to some of their few modes.

टीका : मतिज्ञान और श्रुतज्ञान रूपी-अरूपी सभी द्रव्यों को जानते हैं, किन्तु उनकी सभी पर्यायों को नहीं जानते। उनके विषय का सम्बन्ध सभी द्रव्यों और उनकी कुछ पर्यायों के साथ ही होता है।

इस सूत्र में दिये गये 'द्रव्येषु' शब्द से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल - ये सभी द्रव्य समझने चाहिये। इन ज्ञानों से उन द्रव्यों की कुछ पर्यायों को जाना जा सकता है, सभी को नहीं। ये दोनों ही परोक्ष ज्ञान हैं। इन्द्रियों का विषय और क्षेत्र नियत है। अतः उनके द्वारा सभी द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायों का ज्ञान नहीं हो सकता। मन की भी इतनी शक्ति नहीं है कि वह धर्म आदि सभी द्रव्यों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म सभी पर्यायों को जान सके।

Comments : Sensory knowledge and scriptural knowledge pervade all substances having form or no form but they do not permeate all their modes. These (knowledge) know all the six Dravyas but only some of their modes.

The use of the word 'Dravyeṣu' in this Sūtra covers all six substances - Jīva, Pudgala, Dharma, Adharma, Ākāśa and Kāla. By making use of these knowledge one can know some of the modes of these substances but not all. Both these are indirect knowledge. Sense organs have their limited capacity and extent of space of the substances and as such all substances and their all modes can not be known with the help of these. Even mind is also not so much capable as to know the subtlest part of substances like Dharma etc.

अवधिज्ञान का विषय

Scope of Avadhijñāna

रूपिष्ववधेः ।।२७।।

(रूपिषु अवधेः।)

Rūpiṣvavadheḥ. (27)

शब्दार्थ : **रूपिषु –** रूपियों (द्रव्यों) में; **अवधेः –** अवधिज्ञान का (विषय या सम्बन्ध होता है)।

Meaning of Words : **Rūpiṣu -** mode or form of substances; **Avadheḥ -** (is subject of) Avadhijñāna.

सूत्रार्थ : अवधिज्ञान का सम्बन्ध रूपी द्रव्यों में है। अर्थात् अवधिज्ञान रूपी द्रव्यों को जानता है।

English Rendering : Substances with forms are objects of Avadhijñāna; i.e. by Avadhijñāna one can know only those substances which possess forms or which are embodied.

टीका : पुद्गल द्रव्य रूपी होते हैं। संसारी अवस्था में जीव का पुद्गल द्रव्य से सम्बन्ध होने से उसे भी रूपी माना जाता है। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य – ये सभी अरूपी द्रव्य हैं, इसलिये ये अवधिज्ञान के विषय नहीं बनते हैं। जीव की संसारी अवस्था में भी अवधिज्ञान का विषय रूपी पुद्गल पदार्थ एवं कर्मों में औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक भावों का होता है, क्योंकि इनका रूपी कर्मों से सम्बन्ध है। अतः ये अवधिज्ञान के विषय हैं। रूपी कर्मों का अभाव होने से क्षायिक भाव तथा पारिणामिक भाव तथा धर्म आदि द्रव्यों को अवधिज्ञान से नहीं जाना जा सकता।

Comments : Pudgala Dravyas (matter substances) have physical forms. In the mundane state, because of its association with matter particles, the soul is also considered as having physical form. Dharma, Adharma, Ākāśa and Kāla substances are all form-less and as such they can not be the subject matter of Avadhijñāna. In the mundane state of soul, the subject matters covered by clairvoyance include matter particles having physical forms and the feelings of the soul as a result of fruition of karmas, subsidence and destruction-cum-subsidence of karmas; as these are the result of the association with karmas having physical form. As such these all subject matters are covered by Avadhijñāna. Due to absence of karma particles in case of the feelings generated on destruction of karmas, intrinsic nature of Jīvas and substances like Dharma etc. are not covered by Avadhijñāna.

मनःपर्ययज्ञान का विषय

Scope of Mind Reading Knowledge

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ।।२८।।

(तत् अनन्त-भागे मनःपर्ययस्य।)

Tadanantabhāge Manaḥparyayasya. (28)

शब्दार्थ : **तत् –** उसके (अवधिज्ञान के विषयभूत पदार्थ के); **अनन्तभागे –** अनन्तवें भाग में; **मनःपर्ययस्य –** मनःपर्ययज्ञान की (प्रवृत्ति होती है)।

Meaning of Words : **Tat -** of that (i.e. subject matter of Avadhijñāna); **Anantabhāge -** infinitesimal part of; **Manaḥparyayasya -** mind reading knowledge.

सूत्रार्थ : अवधिज्ञान के विषयभूत पदार्थ के अनन्तवें भाग में मनःपर्ययज्ञान की प्रवृत्ति होती है।

English Rendering : The subject matter of mind-reading knowledge is the infinitesimal part of the subject matter ascertained by Avadhijñāna.

टीका : इस सूत्र में यह बतलाया गया है कि मनःपर्ययज्ञान का विषय अवधिज्ञान के विषय से अत्यन्त सूक्ष्म है। 'गोम्मटसार' के अनुसार सर्वावधिज्ञान का विषय शुद्ध पुद्गल परमाणु होता है और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान का सर्वोत्कृष्ट विषय एक समय में चक्षुरिन्द्रिय के निर्जरा योग्य पुद्गल स्कन्ध द्रव्य होता है।

मनःपर्ययज्ञान से अनन्त पर्यायों को नहीं जाना जा सकता, क्योंकि अनन्त पर्यायों को जानने वाले ज्ञान का आवरण करने वाले कर्मों का क्षयोपशम होना असम्भव है।

Comments : In this Sūtra, it is stated that the subject matter of mind reading knowledge is extremely subtle when compared with the subject matter of Avadhijñāna. According to 'Gommaṭasāra' scripture, the subject matter of Sarvāvadhi Jñāna is pure state of Pudgala Paramāṇu

and the finest subject matter of Vipulamati mind-reading knowledge is the Pudgala Skandha which can be dissociated in one Samaya and be seen by sight sense organ.

The mind-reading knowledge can not know the infinite modes because it is impossible to have destruction-cum-subsidence of knowledge obscuring karmas covering beginningless infinite modes.

केवलज्ञान का विषय
Subject Matter of Omniscience

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।।२९।।

(सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य।)

Sarvadravyaparyāyeṣu Kevalasya. (29)

शब्दार्थ : **सर्वद्रव्यपर्यायेषु –** सर्व द्रव्यों की सर्व पर्यायें; **केवलस्य –** केवलज्ञान का (विषय है)।

Meaning of Words : **Sarvadravyaparyāyeṣu -** all the substances with all their modes; **Kevalasya -** (is) subject matter of Omniscience.

सूत्रार्थ : केवलज्ञान का विषय सर्व द्रव्य और उनकी सर्व पर्याय हैं। अर्थात् केवलज्ञान एक साथ ही सभी पदार्थों को और उनकी सभी पर्यायों को जानता है।

English Rendering : The subject matter of Omniscience is all the substances and their all modes i.e. it knows all the substances and their modes simultaneously.

टीका : केवलज्ञान का विषय–सम्बन्ध सम्पूर्ण द्रव्य और उनकी सर्व (अनन्त) पर्यायें हैं, क्योंकि वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव विशिष्ट तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप सभी पदार्थों को ग्रहण करता है, सम्पूर्ण लोक और अलोक को ग्रहण करता है। इससे बड़ा और कोई ज्ञान नहीं है और न कोई ऐसा ज्ञेय शेष है जो केवलज्ञान का ज्ञेय होने से बचा हो। यह ज्ञान क्षायिक है, जो ज्ञानावरण कर्म का सर्वथा क्षय होने से प्रकट

होता है। अतएव मतिज्ञान आदि चारों क्षायोपशमिक ज्ञानों में से कोई भी ज्ञान इसके साथ न रह सकता और न रहता ही है।

Comments : The scope of Omniscience is all the substances and all their infinite modes as it pervades all Dravyas, Kṣetras, Kāla, specific Bhāva and origin, decay and continuity of all substances. It encompasses all the substances of the universe and beyond universe in its perview. There is no knowledge superior to this knowledge and there is no such knowable matter which is beyond the perview of this knowledge. This knowledge is infinite knowable which gets manifested after complete destruction of knowledge obscuring karmas. Therefore, the four destruction-cum-subsidence kinds of knowledge like sensory knowledge etc. can not exist after the manifestation of this knowledge; nor do they exist.

एक साथ लब्धिरूप से रहने योग्य ज्ञान
Capability of Simultaneous attainment of Knowledges

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ।।३०।।

(एक-आदीनि भाज्यानि युगपत्-एकस्मिन्-आ चतुर्भ्यः।)

Ekādīni Bhājyāni Yugapadekasminnā Caturbhyaḥ. (30)

शब्दार्थ : **एकादीनि –** एक से लेकर; **भाज्यानि –** विभक्त करने योग्य हैं अर्थात् हो सकते हैं; **युगपत् –** एक साथ; **एकस्मिन् –** एक (जीव) में; **आ चतुर्भ्यः –** चार ज्ञान तक।

Meaning of Words : **Ekādīni -** begining with the first; **Bhājyāni -** can be possessed; **Yugapat -** simultaneously; **Ekasmin -** in (one) soul; **Ā Caturbhyaḥ -** up to four kinds of knowledge.

सूत्रार्थ : एक जीव में एक साथ एक को आदि लेकर चार ज्ञान तक भजनीय हैं अर्थात् हो सकते हैं।

English Rendering : A soul can possess from one upto four kinds of knowledge simultaneously.

टीका : किसी आत्मा में एक साथ एक, किसी में दो और किसी में तीन और किसी में चार ज्ञान तक सम्भव हैं। परन्तु पाँचों ज्ञान एक साथ किसी में नहीं होते। जब एक ज्ञान होता है तब केवलज्ञान ही होता है, क्योंकि यह ज्ञान परिपूर्ण होने से कोई अन्य अपूर्ण ज्ञान उसके साथ सम्भव ही नहीं हैं। तत्त्वार्थराजवार्तिककार के अनुसार एक शब्द सङ्ख्यावाची होने पर अङ्गप्रविष्ट आदि रूप श्रुतज्ञान किसी जीव को हो सकता है और नहीं भी हो। अतः अकेला मतिज्ञान भी रह सकता है। जब दो ज्ञान होते हैं तब मति और श्रुतज्ञान ही होते हैं, क्योंकि पाँच ज्ञानों में से नियत सहचारी ये दो ही ज्ञान हैं। शेष तीनों ज्ञान एक दूसरे को छोड़कर भी रह सकते हैं। जब तीन ज्ञान होते हैं तब मति, श्रुत और अवधिज्ञान या मति, श्रुत और मनःपर्ययज्ञान होते हैं। तीन ज्ञान अपूर्ण अवस्था में ही सम्भव हैं और तब चाहे अवधिज्ञान हो या मनःपर्ययज्ञान, मति और श्रुत तो अवश्य होते हैं। जब चार ज्ञान होते हैं तब मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययज्ञान होते हैं, क्योंकि ये ही चारों ज्ञान अपूर्ण अवस्थाभावी होने से एक साथ हो सकते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि एक आत्मा में एक साथ अधिक से अधिक चार ज्ञान शक्तियाँ हो तो सकती हैं, लेकिन एक समय में एक ही लब्धि जानने का काम करती है; अन्य शक्तियाँ उस समय निष्क्रिय हो जाती हैं। मति आदि चार ज्ञान शक्तियाँ आत्मा में स्वाभाविक नहीं हैं, किन्तु कर्म क्षयोपशम रूप होने से कर्म सापेक्ष होती हैं। इसलिये ज्ञानावरणी कर्म का सर्वथा अभाव हो जाने से जब केवलज्ञान प्रकट होता है, तब कर्मोपाधिक शक्तियाँ सम्भव ही नहीं हैं। इसलिये केवलज्ञान के समय कैवल्य के सिवाय न तो अन्य ज्ञान ही रहते हैं और न उनका मति आदि ज्ञान पर्याय रूप कार्य ही रहता है।

Comments : A soul can possess either one, two, three or four kinds of knowledge at a time. But no one can possess all the five kinds of knowledge simultaneously. When there is manifestation of only one kind of knowledge, it is only omniscience because it is a complete knowledge and an in-complete knowledge, can not co-exist with it. According to the author of 'Rājavārtika' scripture, a soul may or may not pos-

sess scriptural knowledge in the form of Aṅgapraviṣṭa etc. of one Saṅkhyāvāchī. As such, even only one sensory knowledge alone may also exist. Whenever there is manifestation of two knowledge, it will always be sensory knowledge and scriptural knowledge as out of five kinds of knowledge, these two as a rule are complimentary to each other. The remaining three knowledge can manifest alone without manifestation of others. When there is manifestation of three knowledge, it is either sensory, scriptural & clairvoyance or sensory, scriptural & mind reading knowledge. These three kinds of knowledge are possible in the incomplete stage of spiritual development and whether it is manifestation of clairvoyance or mind reading knowledge, sensory and scriptural knowledges do manifest in either case. When there is manifestation of four kinds of knowledge, it would be sensory knowledge, scriptural knowledge, clairvoyance and mind reading knowledge as their manifestation is possible in the incomplete stage of spiritual development; these can subsist simultaneously.

It may be mentioned here that although all the four kinds of knowledge can remain to subsist in a soul at the same time, yet only one kind of knowledge would activate at a time; the others would remain inactive at that time, because sensory knowledge etc. are not natural attributes of a soul but these manifest as a result of fruition of corresponding karmas. As such when there is total annihilation of knowledge obscuring karmas resulting in the manifestation of omniscience, existence of any other knowledge resulting from fruition of karmas is not possible. Therefore on manifestation of omniscience, except that kind of knowledge, no other kind of knowledge like sensory knowledge etc. or their modes in any form subsist.

मिथ्याज्ञानों का निरूपण

Manifestation of Wrong Knowledges

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च।।३१।।

(मति-श्रुत-अवधयः विपर्ययः च।)

Matiśrutāvadhayo Viparyayaśca. (31)

शब्दार्थ : **मतिश्रुतावधयः –** मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान; **विपर्ययः –** विपरीत/मिथ्या; **च –** और (सम्यक् भी)।

Meaning of Words : **Matiśrutāvadhayaḥ -** sensory knowledge, scriptural knowledge and clairvoyance; **Viparyayaḥ -** contrary i.e. wrong; **Ca -** and (righteous also).

सूत्रार्थ : मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान विपरीत भी होते हैं और सम्यक् भी होते हैं।

English Rendering : Sensory knowledge, scriptural knowledge and Avadhijñāna (clairvoyance) are contrary or wrong knowledge as well as right knowledge.

टीका : मति, श्रुत और अवधिज्ञान मिथ्याज्ञान भी होते हैं और सम्यग्ज्ञान भी होते हैं। उन मिथ्याज्ञानों को कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधि (विभङ्गावधि) ज्ञान कहते हैं। 'च' शब्द सूत्र में मिथ्या और सम्यग्ज्ञान का समुच्चय सूचक है। सूत्र में 'विपर्यय' शब्द संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय का द्योतक है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय दोष पाये जाते हैं, लेकिन अवधिज्ञान में संशय नहीं होता।

Comments : Sensory knowledge, scriptural knowledge and clairvoyance may be wrong knowledge as well as right knowledge. The wrong kinds of knowledge are known as Kumati, Kuśruta and Kuavadhi (Vibhaṅgāvadhi). The word 'Ca' appearing in the Sūtra is to indicate the integration of wrong and right knowledge. The word 'Viparyaya' in the Sūtra is to indicate doubt, perversion and indecisiveness. In the sensory knowledge and scriptural knowledge, infirmities like doubt, perversion, indecisiveness are found but doubt does not subsist in the manifestation of clairvoyance.

विपरीत ज्ञान का कारण
Causes of Wrong Knowledge

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।।३२।।

(सत्-असतोः अविशेषात् यद् ऋच्छा-उपलब्धेः उन्मत्तवत्।)

Sadasatoraviśeṣādyadṛcchopalabdherunmattavat. (32)

शब्दार्थ : **सदसतोः –** सत् और असत् में; **अविशेषात् –** भेद नहीं करना; **यदृच्छोपलब्धेः –** अपनी इच्छा के अनुसार ग्रहण करना; **उन्मत्तवत् –** उन्मत्त पुरुष के समान।

Meaning of Words : **Sadasatoḥ -** in real and unreal; **Aviśeṣāt -** does not discriminate; **Yadṛcchopalabdhe -** to know according to one's whims; **Unmattavat -** like a lunatic.

सूत्रार्थ : सत् (सही) और असत् (गलत) में भेद न कर उन्मत्त पुरुष के समान अपनी इच्छा से पदार्थ को ग्रहण करने से वह ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है।

English Rendering : (A wrong believer) does not discriminate between the real and unreal like a lunatic, who accepts things according to his own whims and as a result even his real knowledge becomes unreal.

टीका : 'सत्' शब्द के अनेक अर्थ होने पर भी 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' के अनुसार यहाँ पर विवक्षा से प्रशस्त अर्थ ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् सत् यानी प्रशस्त तत्त्वज्ञान और असत् यानी अज्ञान। 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रन्थ के अनुसार प्रकृत में सत् का अर्थ विद्यमान और असत् का अर्थ अविद्यमान है।

इस सूत्र द्वारा मिथ्यादृष्टि मनुष्य की तुलना पागल पुरुष से की गई है जो सत्य-असत्य वस्तु के निर्णय के अभाव में अपनी इच्छानुसार कभी-कभी सत्य को असत्य, सत्य को सत्य, असत्य को असत्य भी कहता है। वैसे ही मिथ्यादृष्टि तत्त्व एवं अतत्त्व के सही स्वरूप का निर्णय नहीं कर पाता।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबन्धी कषाय रूप मोहनीय कर्म के उदय से विपरीत रूप में परिणमन करने लगते हैं। ऐसी स्थिति प्रथम गुणस्थान से द्वितीय गुणस्थान तक पूर्णरूप से तथा तृतीय गुणस्थान में मिथ्या और सम्यक्त्व की मिश्र दशारूप रहती है।

Comments : 'Sat' word has many meanings but according to 'Tattvārtharājavārtika' scripture in the given context its meaning here is 'Righteous'. That is 'Sat' means righteous knowledge of Realities and

'Asat' means wrong knowledge. According to 'Sarvārthasiddhi' scripture, the meaning of 'Sat' is 'existing' and 'Asat' means 'non-existing' of the subject under consideration.

In this Sūtra comparision of a wrong-believer has been made with a lunatic. In absence of right discrimination between truth & untruth, according to his own whim, a lunatic sometimes by accident or chance tells truth as untruth, sometimes truth as truth and sometimes untruth as untruth. Similarly a wrong believer can not decisively discriminate between the right and the wrong nature of Realities.

As a result of rise of delusive karmas in the form of wrong faith, the right & wrong faith and the Anantānubandhī type of passions, the sensory knowledge, scriptural knowledge and clairvoyance transform in to a contrary way i.e. erroneous knowledge. Such a situation is fully present in the first and second stages of spiritual development and in the third stage, when there is a mixed state of wrong & right faith karma fruition.

नयों का प्रयोजन एवं प्रकार
Purpose & Kinds of Stand-points

नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ।।३३।।

(नैगम-सङ्ग्रह-व्यवहार-ऋजुसूत्र-शब्द-समभिरूढ-एवम्भूताः नयाः।)

Naigamasaṅgrahavyavahāraṛjusūtra-
śabdasamabhirūḍhaivambhūtā Nayāḥ. (33)

शब्दार्थ : **नैगम –** नैगम; **सङ्ग्रह –** सङ्ग्रह; **व्यवहार –** व्यवहार; **ऋजुसूत्र –** ऋजुसूत्र; **शब्द –** शब्द; **समभिरूढ –** समभिरूढ़; **एवम्भूताः –** एवम्भूत; **नयाः –** नय हैं।

Meaning of Words : **Naigama -** figurative; **Saṅgraha -** general or common or synthetic; **Vyavahāra -** distributive or analytic; **Ṛjusūtra -** actual condition at a particular instant and for a long time or straight; **Śabda -** descriptive or varbalistic; **Samabhirūḍha -** conventional; **Evambhūtāḥ -** specific; **Nayāḥ -** stand-points.

सूत्रार्थ : नैगम, सङ्ग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ तथा एवम्भूत – (सात) नय हैं।

English Rendering : (The seven) stand-points are - figurative, general or common, distributive, actual condition, descriptive, conventional and specific.

टीका : सूत्र छह की टीका में प्रमाण और नय का सङ्क्षिप्त कथन है। प्रमाण से वस्तु के सम्पूर्ण धर्मों का ज्ञान प्राप्त होता है। नय से किसी धर्म विशेष का कथन किया जाता है।

नय का सामान्य लक्षण : किसी भी विषय का सापेक्ष निरूपण करने वाला विचार नय है। सङ्क्षेप से नय के दो भेद हैं – द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय।

जगत् में छोटी या बड़ी सभी वस्तुएँ एक दूसरे से न तो सर्वथा असमान ही होती हैं, न सर्वथा समान। इनमें समानता और असमानता के दोनों अंश रहते हैं। इसलिये वस्तु मात्र सामान्य – विशेष है, ऐसा कहा जाता है। मनुष्य की बुद्धि कभी तो वस्तु के सामान्य अंश की ओर झुकती है और कभी विशेष अंश की ओर। जब वह सामान्य अंश को ग्रहण करती है, तब वह विचार द्रव्यार्थिक नय कहलाता है और जब वह विशेष अंश को ग्रहण करती है, तब वह विचार पर्यायार्थिक नय कहलाता है। सभी सामान्य और विशेष दृष्टियाँ भी एक-सी नहीं होतीं, उनमें भी अन्तर रहता है। यही बतलाने के लिये इन दो दृष्टियों के सङ्क्षेप में भेद किये गये हैं। द्रव्यार्थिकनय के तीन और पर्यायार्थिकनय के चार – ऐसे कुल सात भेद किये गये हैं। द्रव्य दृष्टि में विशेष (पर्याय) और पर्याय दृष्टि में सामान्य (द्रव्य) आता ही नहीं, ऐसी बात नहीं है। यह दृष्टिविभाग तो केवल गौण-प्रधानभाव की अपेक्षा से है।

द्रव्यार्थिक नय के तीन भेद हैं – नैगम, सङ्ग्रह और व्यवहार नय। **पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं –** ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवम्भूत नय।

नैगम नय : नैगम का अर्थ सङ्कल्प है। सङ्कल्प मात्र के ग्राहक को नैगम नय कहते हैं। जैसे, किसी काम के सङ्कल्प से जाने वाले से कोई पूछता है कि आप कहाँ जा रहे हैं? तब वह कहता है कि मैं कुल्हाड़ी या कलम लेने जा रहा हूँ। उत्तर देने वाला तो वास्तव में कुल्हाड़ी के हत्थे के लिये लकड़ी अथवा कलम के लिये कलम लेने ही जा रहा है। लेकिन पूछने वाला भी तत्क्षण उसके भाव को समझ जाता है। यह

एक लोकरूढ़ि है। सभी प्रकार की लोकरूढ़ियों से पड़े संस्कारों के कारण जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे सभी नैगम नय में आते हैं।

सङ्ग्रह नय : जड़ या चेतन रूप अनेक में जो सत् रूप एक सामान्य है, उसी पर दृष्टि रखकर, दूसरे विशेषों को ध्यान में न रखकर, सभी को एक रूप मानकर ऐसा विचार करना कि सम्पूर्ण जगत् सत् रूप है, क्योंकि सत्ता रहित कोई वस्तु है ही नहीं, यही सङ्ग्रह नय है। यथा, वस्त्रों के विविध प्रकारों तथा विभिन्न वस्त्रों की ओर लक्ष्य न देकर मात्र वस्त्ररूप सामान्य को ही दृष्टि में रखकर विचार करना कि यहाँ केवल वस्त्र हैं, यही सङ्ग्रह नय है। इसी प्रकार 'सेना' या 'वन' कहने से सभी का सङ्ग्रह होता है, उसी से सङ्ग्रह नय का ग्रहण होता है।

व्यवहार नय : विविध वस्तुओं को एक रूप में सङ्कलित करने के बाद भी जब उनका विशेष रूप में बोध करना आवश्यक हो या व्यवहार में उपयोग करने का प्रसङ्ग हो तब उसका विशेष रूप से भेद करके पृथक्करण करना पड़ता है। वस्त्र कहने मात्र से भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों का अलग-अलग बोध नहीं होता। इसलिये उनका विभाग करना आवश्यक है। जैसे, खादी (चरखे) का वस्त्र या मिल का वस्त्र। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में सत् रूप वस्तु भी जड़ और चेतन दो प्रकार की है और चेतन तत्त्व भी संसारी और मुक्त दो प्रकार के हैं। इस प्रकार के पृथक्करण करने पड़ते हैं। ऐसे पृथक्करण से युक्त सभी विचार व्यवहार नय की कोटि में आते हैं।

ऋजुसूत्र नय : जो विचार भूत काल और भविष्यत् काल का ध्यान न करके केवल वर्तमान काल गत पदार्थों को ही ग्रहण करता है, वह ऋजुसूत्र नय है।

शब्द नय : व्याकरण के अनुसार सिद्ध कर लिये गये शब्द का यथायोग्य प्रयोग करना शब्द नय है। अथवा, शब्द के माध्यम से अर्थ का बोध कराने वाला शब्द नय है। शब्द नय में पर्यायवाची विभिन्न शब्दों का प्रयोग होने पर भी एक ही अर्थ का कथन किया जाता है। जैसे, इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि पर्यायवाची शब्दों का एक ही अर्थ है, परन्तु यह एकार्थता समान काल, लिङ्ग आदि वाले शब्दों में है, सब पर्यायवाची शब्दों में नहीं। शब्द नय के कथन में इसका भी विचार किया जाता है।

समभिरूढ़ नय : जो शब्द के अनेक अर्थों को छोड़कर प्रधानता से एक ही अर्थ को कहता है उसे समभिरूढ़ नय कहते हैं। जैसे, 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं। परन्तु वह शब्द एक पशु विशेष के रूप में रूढ़ि या प्रसिद्ध है, अतः यह नय उसे ही ग्रहण

करता है। इस नय के अनुसार जो शब्द जिस अर्थ या पदार्थ के लिये प्रसिद्ध हो गया है, वह शब्द हर अवस्था में उसी अर्थ या पदार्थ का वाचक होगा। जैसे, आठ उपवास करके मोक्ष जाने वाले मुनि को सदा अष्टोपवासी कहना।

एवम्भूत नय : जो विचार शब्द से फलित होने वाले अर्थ के घटने पर ही वस्तु को उस रूप में मानता है, अन्यथा नहीं, वह एवम्भूत नय है। इसके अनुसार राजा तभी कहला सकता है जब वह राजदण्ड धारण करता हुआ शोभायमान हो रहा हो। इसी प्रकार नृप तब कहना चाहिए जब वह मनुष्यों का रक्षण कर रहा हो। सारांश यह है कि किसी व्यक्ति के लिये राजा या नृप शब्द का प्रयोग करना तभी ठीक है जब उसमें शब्द का व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ भी घटित होता हो।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्तरवर्ती नयों को पूर्व नयों की अपेक्षा सूक्ष्म कहा जाता है।

Comments : Under the comments of Sūtra six, a brief description of 'Pramāṇa' and 'Naya' is given. By Pramāṇa we get complete knowledge about the attributes of an object but by means of Naya (standpoint), states only one particular attribute out of several attributes of a thing is stated.

General definition (Characteristic) of a stand-point : To describe an object in a relative context is a stand-point. In brief, a stand-point is of two kinds - Dravyārthika Naya and Paryāyārthika Naya.

In the universe, whether small or big, things are neither completely similar nor completely dissimilar. In them there exist a mixture of both similarity and dissimilarity. Therefore, it is said that an object is a mixture of both general and specific. A person's inclination at times may be towards the general part of an object and at times towards the specific part. When it encompasses the general aspect or a side of an object, it is called Dravyārthika Naya and when it encompasses the specific aspect, it is called 'Paryāyārthika Naya'. All the general and specific-point of views are not always similar and they are also with some differences. To highlight these differences in these two view-points, further brief classification has been made. Dravyārthika Naya is of three kinds and Paryāyārthika Naya of four kinds - in all, of seven kinds. It is not that there is no specific (Paryāya) view point while considering general (Dravya) view point or general view-point while considering specific view-point; these divisions are only from primary and secondary point of views.

Dravyārthika Naya is of three kinds : Naigama (figurative), Saṅgraha (general, common or synthetic) and Vyavahāra Naya (distributive or analytic).

Paryāyārthika Naya is of four kinds : Ṛjusūtra (Actual condition at a particular instant and for a long time or straight); Śabda (descriptive or varbalistic); Samabhirūḍha (conventional) and Evambhūta Naya (specific stand point).

Naigama Naya (Figurative stand-point) : 'Naigama' means purpose or intention. It only takes into account the purpose or intention which is yet to be accomplished. For example, if some one going with a purpose or an intention to accomplish a task is asked as to where he was going. Then he replies that he is going to bring a small chopper or a pen. As a matter of fact, the person answering is going to fetch only the handle wood for the chopper or a small piece of a branch to make a pen. The man asking these questions also understands the purpose or the intention of the person answering. This is a way that social interaction process takes place. All this is customery in social interaction. Such practices are covered by Naigama Naya.

Saṅgraha Naya (General, Common or Synthetic stand-point) : The synthetic stand-point is that which considers only general or common attributes without taking into account specific ones of all existence of sentient & insentient objects as a single class as there is nothing in this world which does not have its existence. For example, without consideration of different kinds and different varieties of cloth, only to consider them as cloth is synthetic stand-point. Similarly when we speak 'Armed Force' or 'Forest', we deal in synthetic stand-point.

Vyavahāra Naya (Distributive or analytical stand-point) : After synthesis of many things in a single group, when it becomes necessary to analysis them or when it becomes necessary to use them for social interaction, it is necessary to make its divisions in a specific manner. When we say 'cloth', it does not indicate about the different kinds of cloth and therefore it is essential to have their classification; for example, Khādī - cloth, mill made. Similarly the Dravyas existing as a Reality are of sentient and non-sentient types. Sentient reality is also of two types as mundane living beings and liberated souls. We have to

classify them in many such ways. All such analytical approaches are covered under Vyavahāra Naya.

Ṛjusūtra Naya (Exactly present condition) i.e. only present state of an object : The stand-point which takes into account only the present state of an object without any consideration of its past or future states is known as Ṛjusūtra Naya.

Śabda Naya (Descriptive Stand-point) : To use an appropriate word in accordance with the rules of grammer is a Śabda Naya or the use of the word that conveys the required meaning is a Śabda Naya. In this stand-point when synonyms are used, they convey the same meaning; for example, the words Indra, Śakra, Purandara etc. are all synonyms having the same meaning; but such a similarity is for the use of words having the same tense, gender etc. and is not in all synonyms. This point is also considered in Śabda Naya.

Samabhirūḍha Naya (Conventional stand-point) : That stand-point which accepts mainly that meaning of the word which is in vogue, keeping aside several other meanings of the word. For example, the word 'Go' has several meanings but it is commonly used for identification of a specific animal (i.e. cow). As such this stand-point accepts only - the meaning which is in vouge. According to this stand-point, the word in common practice conveys a specific meaning and is always used for that; for example the ascetic after observing fast for eight days attaining liberation, is always designated as 'Aṣṭopavāsī'.

Evambhūta Naya (Specific stand-point) : The stand-point which accepts only the meaning that is meant to be conveyed by the word used at the time of use and not otherwise. According to this stand-point, one can be called 'Rājā' (i.e. king) only when he reigns with a regal scepter. Similarly the word 'Nṛpa' be used only when he is providing protection to the people. The essence is that the use of the word 'Rājā' or 'Nṛpa' is only to be made when it conveys the meaning of the present activity of the object.

From the above description, it is clear that succeeding stand-points are subtler & subtler as compared to the earlier ones.

इति तत्त्वार्थसूत्रे प्रथमोऽध्यायः।

End of First Chapter of Tattvārthasūtra.